मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास हिन्दी-पुष्पमाला—नं० १७

नवनिधि

हिन्दू-मुस्लिम नौ प्रतिनिधि हिन्दी-कवियों
की चुनी हुई कविताओं का संग्रह

सम्पादक

भगवद्दत्त बी० ए०

प्रकाशक

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास
संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

१९३८

भूमिका

आदि काव्य, वेद

ससार की विविध रचना भगवान् का काव्य है। इस रचना के सौन्दर्य में लीन होकर मनुष्य अलौकिक रसों का अनुभव करता है। वेद इसी रचना के सूक्ष्म तत्त्वों के दर्शाने के साधन हैं। वेद से बढी हुई कविता ससार भर में दृष्टिगोचर नही होती। वेद तो 'देवस्य काव्यम्' परम देव का काव्य है। ऋग्वेद के उषा सूक्त एक अद्वितीय कविता के दृष्टान्त हैं। इन्द्रसूक्त शूर रस से भरे हुए हैं। दानस्तुतियाँ भी कुछ कम महत्त्व नही रखतीं। नासदीय सूक्त पर तो प्रसिद्ध जर्मन-विद्वान् पाल डाईसन मुग्ध था। इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल से विद्वानो के लिए वेद काव्य-धारा का मूल रहा है।

वेद में रहस्यवाद की कविता

जिसे आज रहस्यवाद कहते हैं, उसे कभी आत्मतत्त्व या

योगतत्त्व कहते थे। वेद में इस आत्मतत्त्व की कविता के अनेक उज्ज्वल और हृदयहारी मन्त्र हैं। 'हे भगवन्! तुम सीमारहित समुद्र हो।' अम्भर की कन्या वाक् का सारा सूक्त किसी विलक्षण आन्तरिक घटना का द्योतक है। देखिए—'मैं रुद्रों और वसुओं के साथ चलती हूँ मैं सूर्यों और विश्व देवों के साथ हूँ।' 'मैं ही जिसे चाहूँ उसे ब्रह्मा ऋषि अथवा दिव्य शक्तिवाला कर दूँ।'

योगी अरविन्द का कथन है कि वेद के सैकडो सूक्त अन्तरात्मा की अनन्त की ओर दौड का चित्र खींचते हैं। ससार के लोग अभी कबीर और नानक के ही रहस्यवाद का अध्ययन करके चकित हो रहे हैं। जब वे वेद ऐसे दैवी काव्य का पाठ करेंगे, तो उनके आनन्द का पारावार न रहेगा।

संस्कृत-वाङ्मय के अन्य प्राचीन काव्य

महाभारत के आरम्भ में अनेक दिव्यकर्मा, विक्रमशील, त्यागी, माहात्म्यवान्, आस्तिक, सत्यनिष्ठ, पवित्र और ऋजुगुण-सम्पन्न प्राचीन महाबल राजाओं का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् वहाँ यह भी लिखा है कि उनके इन कर्मों का वर्णन बड़े-बड़े विद्वान् कविसत्तमों ने किया है। उन कवि-शिरोमणियों के वे सब ग्रन्थ अब कहाँ हैं। वस्तुत वे सब काल के ग्रास हो गए। आर्यों के प्रमाद, सस्कृत विद्या के ह्रास, आक्रमणकारियों की मदान्धता और वर्तमान पाश्चात्त्य सभ्यता की नास्तिकता के कारण उन ग्रन्थों का अब नामशेष भी नहीं रहा।

वाल्मीकि और व्यास

फिर भी दो कवि हैं, जिनके ग्रन्थ हम तक पहुँच पाए हैं। वे दोनों ही दो महाकाव्यों के रचयिता हैं। वे भारत ही नहीं प्रत्युत संसार भर के कविरत्न हैं। जिस प्रकार भारत में सहस्रों वर्षों से हिमालय अपना सिर ऊँचा किए खड़ा है, उसी प्रकार यहाँ रामायण और महाभारत भी अपना सिर ऊँचा किए विद्यमान हैं। भारत के कितने श्रेष्ठ कवि हैं, जिन्होंने इन महाकाव्यों की कीर्ति नहीं गाई। वररुचि और भास, अश्वघोष और कालिदास, भवभूति और माघ, चन्द और तुलसी सब ही ने इन कविप्रवरों की स्तुतियों से अपनी लेखनियाँ पवित्र की हैं।

कौन-सा रस है अथवा मानव-जीवन का कौन-सा विषय है, जिस पर वाल्मीकि और कृष्ण द्वैपायन ने प्रकाश नहीं डाला। इनके ग्रन्थों का पढ़ने से ही सम्बन्ध है। और इन मूल ग्रन्थों के पढ़े बिना कौन है, जो भारत में विद्वान् कहला सकता है।

भारत-उत्तर काल के कवि

महामुनि पतञ्जलि ने किसी वाररुच काव्य का उल्लेख अपने महाभाष्य में किया है। वररुचि-कृत एक भाण भी अब मुद्रित हो चुका है। इस भाण से प्रतीत होता है कि वररुचि पर सरस्वती देवी की अपार कृपा थी। वररुचि के श्लोकों में भावप्रदर्शन का एक अनूठा आनन्द मिलता है। वही भास, जो कुछ वर्ष पूर्व एक स्वप्नमात्र समझा था, आज घर-घर का नाम हो रहा है। उसकी

कृतियाँ पठित समाज को एक बार फिर प्रफुल्लित कर रही हैं। अश्वघोष का सुषुप्ति-काल भी अब समाप्त हो चुका है। बुद्ध-चरित और सौन्दरनन्द की सरस रचना किसे नहीं मोह रही। यदि अश्वघोष का राष्ट्रपालचरित नाटक भी मिल गया तो फिर उसकी सूक्तियाँ कालिदास और भवभूति से कितनी टक्कर लेंगी, यह नहीं कहा जा सकता। ये हुए संस्कृत काव्याकाश के देदीप्यमान सूर्य। संस्कृत-वाङ्मय की जो दिन-दिन खोज हो रही है, उससे इनकी टक्कर के कितने और कवि उपलब्ध होंगे यह अभी भविष्य की बात है।

प्राकृत और अपभ्रंश के कवि

हाल या सातवाहन की प्राकृत भाषा में लिखी गई गाथा-सप्तशती अब बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। प्राकृत रचनाओं में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। दिवगत प० पद्मसिंह शर्मा ने अपनी बिहारी की आलोचना द्वारा हिंदी-जगत् को इस काव्य का भी थोड़ा-सा ज्ञान करा दिया है। अपभ्रंश-साहित्य भी कभी बड़ा विशाल था। प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इस विषय का संकेतमात्र किया है। अपभ्रंश-साहित्य के अब तक अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी-संसार में अभी उनका उल्लेख भी नहीं हुआ। धनपालविरचित भविसयत्तकहा इसी प्रकार का एक बड़ा ग्रन्थ है। यह काव्य २२ सन्धियों में समाप्त हुआ है। अपभ्रंश काव्य के पण्डित अभी अपने देश में कम हैं, अतः इसके विषय में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी कवि

वेद के पश्चात् सस्कृत, सस्कृत के पश्चात् प्राकृत, प्राकृत के पश्चात् और साथ-साथ अपभ्रंश और अपभ्रश के पश्चात् और साथ-साथ हिन्दी काव्य का उदय हुआ। हिन्दी काव्य का ससार की कविता में एक उत्कृष्ट स्थान है।

प्रस्तुत संग्रह

हिन्दी का विशाल साहित्य-भाण्डार आर्य और मुसलमान दोनो ही कवियों ने भरा। उस समय के साहित्यिक मुसलमान पक्षपाती नहीं थे। वे राम और कृष्ण में उतनी ही श्रद्धा-भक्ति रखते थे, जितनी कि हिन्दू कवि। उनके हिन्दी-साहित्य में अरब के स्वप्न नहीं हैं। उनकी हिन्दी हिन्दी ही है, हिन्दुस्तानी नहीं। जायसी को पढ़कर कौन हिन्दू कहेगा कि वह हमारा नहीं है। कवि-शिरोमणि तुलसीदास ने उसकी गुण-गरिमा को देखकर ही अपने काव्य में बहुधा उसका अनुकरण किया।

आलम तो थे ही ब्राह्मण। पर रसखान मुसलमान होते हुए भी हिन्दू-धर्म के प्रभाव से प्रभावित थे। इस नवविधि में ये तीन कवि हिन्दी-कविता के प्रति मुसलमानों का भाव प्रकट करने के लिए रखे गए हैं। उस काल के और आजकल के मुसलमान कवियों में भूतलाकाश का अन्तर हो गया है।

इस सग्रह के शेष छ कवि हिन्दू हैं। श्री जगन्नाथदास रत्नाकर उनमें से अन्तिम हैं। वे सवत् १९८९ तक तो हमारे

ही मध्य में थे । पंजाबी विद्यार्थी तुलसी और सूर, रहीम और कबीर आदि से तो विशेष परिचित हैं पर जायसी आदि का उन्होंने नाम ही श्रवण किया है । इसलिए प्रस्तुत संग्रह में ऐसे कवियों की अमृतवाणी रखी गई है, जो हिन्दी-काव्य-संसार के रत्न हैं, पर जिनसे यहाँ के विद्यार्थी कम परिचित हैं ।

संग्रह के अन्त में हमने कठिन शब्दों का अर्थ देकर पुस्तक के समझने का मार्ग सरल करने का यत्न किया है । आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस संग्रह से लाभ उठावेंगे ।

माडलटाऊन,
लाहौर

भगवद्दत्त

कवि-सूची

१

मलिक मुहम्मद जायसी

मुस्लिम कवि

जीवन-परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी का वास्तविक नाम मुहम्मद था। जायस ग्राम में रहने के कारण ये जायसी कहलाते थे और मलिक इनकी उपाधि थी। जायस रायबरेली का एक कस्बा और रेलवे स्टेशन है।

कई कहते हैं कि इनका जन्म ग़ाज़ीपुर में हुआ था। इनकी एक चौपाई से भी कुछ ऐसा ही भ्रम पड़ता है कि इनका जन्म जायस में नहीं हुआ। आपने पदमावत में लिखा है—

जायस नगर धरम अस्थानू,
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।

इससे यही स्पष्ट होता है कि इन्होंने कही बाहर से आकर जायस में पदमावत की रचना की।

इनका जन्म एक दरिद्र कुल में हुआ था। बाल्यावस्था में ही शीतला निकलने के कारण इनकी एक आँख जाती रही और चेहरा

कुरूप सा हो गया । इसी समय में इनकी माता का भी देहांत हो गया । पिता की मृत्यु शीतला निकलने से पूर्व ही हो चुकी थी । अतः ये अनाथ होकर साधु फकीरों के साथ फिरने लगे । उनकी सगति में रहकर इन्होने बहुत कुछ सीखा । वेदान्त और योग क्रिया की भी बहुत सी बातें इन्हें ज्ञात थीं । पदमावत में स्थान २ पर इन्होंने अपने इस ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है । अखरावट में तो मुख्यता ही वेदान्त की है

कुछ समय के पश्चात् बहुत से लोग इनके शिष्य हो गए । वे शिष्य प्राय इनके बनाये 'बारहमासे' गाया करते थे । इनका एक चेला अमेठी आया । वह इनका बनाया हुआ नागमती का बारह मासा गा-गा कर घर-घर भीख माँगने लगा । एक दिन अमेठी के राजा ने भी उसे सुना । उन्होंने उसे बहुत पसद किया और उसके रचयिता का परिचय पूछा ।

परिचय पाकर राजा ने मलिक मुहम्मद जायसी को लाने के लिये अपना एक सर्दार भेजा । तब से ये अमेठी में ही रहने लगे । राजा निस्सन्तान था, इन्हीं के वरदान से उसका वश चला । तब से तो इनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई । अत में इनका देहांत भी वहीं हुआ । राजा ने अपने प्रासाद से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर इनकी कब्र बनवा दी, जो अब भी विद्यमान है ।

एक दिन अवध के किसी व्यक्ति ने इनकी कुरूपता देख हँस दिया, इस पर इन्होंने बड़े धैर्य से कहा—

"मोहि का हससि कि कोहरहि"

अर्थात्—मुझ पर हंसते हो या उस कुम्हार पर जिसने मेरी ऐसी शक्ल बनाई है ? इस पर वह व्यक्ति बडा लज्जित हुआ और उसने इनके पैरों पर पडकर क्षमा माँग ली।

आपके मृत्यु-संवत् का अभी तक कुछ पता नहीं चल सका। इनकी दो पुस्तकें पद्य में मिलती हैं 'पदमावत' और 'अखरावट'। पदमावत में रानी पदुमावति की कहानी लिखने में तो इन्होने बड़ी उत्कृष्टता दिखाई है। यद्यपि उसकी भाषा कुछ ग्रामीण सी है तथापि उसमें रूपक, उपमा इत्यादि का समावेश ऐसी सुंदरता से किया गया है कि कहते ही बनता है। सारी की सारी कथा दोहे और चौपाइयों में है। यद्यपि आप मुसलमान थे तथापि हिन्दु देवताओं के विषय में जो इन्होने भक्ति दिखलाई है वह अनुपम है।

अखरावट की रचना पदमावत के पश्चात् हुई। इसमें 'क' से लेकर प्राय सभी अक्षरों पर कविता की गई है। इसमें भगवद्भक्ति तथा ससार की असारता बतलाई गई है।

पद्मावत का एक अत्यन्त श्रेष्ठ संस्करण हमारे मित्र डा० सूर्यकान्त एम० ए० ने पञ्जाब विश्वविद्यालय की ओर से सन् १९३४ में प्रकाशित किया है।

पद्मावत

राजा-सुआ-संवाद

राजइ कहा सत्त कहु सूआ । बिनु सत कस जस सेवँरि भूआ ॥
होइ मुख रात सत्त कह बाता । जहाँ सत्त तहँ धरम सँघाता ॥
बाँधी सिसिटि अहइ सत केरी । लछिमी आहि सत्त कइ चेरी ॥
सत्त जहाँ साहस सिधि पावा । अउ सत-बादी पुरुख कहावा ॥
सत कहँ सती सँवारइ सरा । आगि लाइ चहुँ दिसि सत जरा ॥
दुइ जग तरा सत्त जेइ राखा । अउरु पिआर दइहि सत-भाखा ॥
सो सत छाँड जो धरम बिनासा । का मति हिअइ कीन्ह सत-नासा ॥

तुम्ह सयान अउ पंडित अ-सत न भाखहु काउ ।
सत्त कहहु तुम्ह मो सउँ दहुँ का कर अनिआउ ॥

चौपाई

सत्त कहत राजा जिउ जाऊ । पइ मुख अ-सत न भाखउँ काऊ ॥
हउँ सत लेइ निसरा एहि पतेँ । सिंघल-दीप राज घर हतेँ ॥

पदुमावति राजा कइ बारी। पदुम-गंध ससि बिधि अउतारी॥
ससि-मुख अंग मलय-गिरि रानी। कनक सुगंध दुआदस बानी॥
हहिँ पदुमिनि जो सिंघल माहाँ। सुगँध सुरूप सो तेहिं कइ छाहाँ॥
हीरा-मनि हउँ तेहि क परेवा। काँठा फूट करत तेहि सेवा॥
अउ पाएउँ मानुस कइ भाखा। नाहिँ त पंखि मूठि भर पाँखा॥

जउ लहि जिअउँ राति दिन सँवरि मरउँ ओहि नाउँ।
मुख राता तन हरिअर दुहूँ जगत पइ जाउँ॥

चौपाई

हीरा-मनि जो कवँल बखाना। सुनि राजा होइ भवँर भुलाना॥
आगे आउ पंखि उँजिआरे। कहे सो दीप पनिग के मारे॥
रहा जो कनक सुबासिक ठाऊँ। कस न होए हीरा-मनि नाऊँ॥
को राजा कस दीप उतंगू। जेहि रे सुनत मन भएउ पतंगू॥
सुनि सो समुद चखु भए किलकिला। कवँलहि चहउँ भवँर होइ मिला॥
कहु सुगंध धनि कस निरमरी। दहुँ अलि संग कि अब-हीँ करी॥
अउ कहु तहँ जो पदुमिनि लोनी। घर घर सब के होहिँ जस होनी॥

सबइ बखान तहाँ कर कहत सो मो सउँ आउ।
चहउँ दीप वह देखा सुनत उठा तस चाउ॥

चौपाई

का राजा हउँ बरनउँ तासू। सिंघल-दीप आहि कबिलासू॥
जो गा तहाँ भुलानेउ सोई। गइ जुग बीति न बहुरा कोई॥

घर घर पदुमिनि छतिस-उ जाती । सदा बसंत दिवस अउ राती ॥
जेहि जेहि वरन फूल फुलवारी । तेहि तेहि वरन सुगँध सो नारी ॥
गँधरब-सेन तहाँ वड राजा । अछरिन्ह माँह इँदर बिधि साजा ॥
सो पदुमावति ता करि वारी । अउ सब दीप माँह उँजिआरी ॥
चहूँ खंड के वर जो ओनाहीँ । गरवहि राजा बोलइ नाहीँ ॥

उअत सूर जस देखी चाँद छपइ तेहि धूप ।
अइसइ सवइ जाहिँ छपि पदुमावति के रूप ॥

चौपाई

सुनि रवि नाउँ रतन भा राता । पंडित फेरि इहइ कहु वाता ॥
तुइँ सु-रंग मूरति वह कही । चित महँ लागि चितर होइ रही ॥
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी । सब घट पूरि हिअइ परगसी ॥
अब हउँ सुरुज चाँद वह छाया । जल बिनु मीन रकत बिनु काया ॥
किरिनि करा भा पेम अँकूरू । जउँ ससि सरग मिलउँ होइ सूरू ॥
सहस-उ करा रूप मन भूला । जहँ जहँ दिसिटि कवँल जनु फूला ॥
तहाँ भवँर जिउ कवँला गंधी । भइ ससि राहु केरि रिनि-बंधी ॥

तीनि लोक चउदह खँड सवइ परइ मोहिँ सूझि ।
पेम छाँडि किछु अउरु न (लोना) जो देखउँ मन बूझि ॥

चौपाई

पेम सुनत मन भूलु न राजा । कठिन पेम सिर देइ तो छाजा ॥
पेम फाँद जउँ परइ न छूटा । जीउ दीन्ह बहु फाँद न टूटा ॥

गिरिगिट छंद धरइ दुख तेता। खन खन रात पीत खन सेता॥
जानि पुछारि जो भा वन-वासी। रोवँ रोवँ परे फाँद नग-वासी॥
पाँखन्ह फिरि फिरि परा सो फाँदू। उडि न सकइ अरुझइ भइ बाँदू॥
मुएउँ मुएउँ अह-निसि चिल्लाई। ओहि रोस नागन्ह धरि खाई॥
पाँडक सुआ कंठ वह चीन्हा। जेहि गिउ परा चाहि जिउ दीन्हा॥

तीतर गिउ जो फाँद हइ निति-हि पुकारइ दोख।
सो कित हँकारि फाँद गिउ (मेलइ) कित मारे होइ मोख॥

चौपाई

राजइ लीन्ह ऊभि कइ साँसा। अइस बोलि जनि बोलु निरासा॥
भलेहि पेम हइ कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइ खेला॥
भीतर दुख जो पेम मधु राखा। गंजन मरन सहइ जो चाखा॥
जो नहि सीस पेम पँथ लावा। सो पिरिथुमि महँ काहे क आवा॥
अब मइँ पेम फाँद सिर मेला। पाउँ न ठेलु राखु कइ चेला॥
पेम-बार सो कहइ जो देखा। जेइ न देख का जान बिसेखा॥
तब लगि दुख पिरितम नहि भेंटा। मिला तो गएउ जनम दुख मेटा॥

जस अनूप तुइँ देखी नख-सिख बरन सिँगार।
हइ मोहि आस मिलइ कइ जउँ मेरवइ करतार॥

राजा का स्वर्गवास

तौलहि श्वास पेट महँ अही। जौलहि दशा जीउ की रही॥
काल आइ देख लाई साँटी। उठि जिय चला छाँड़ के माटी॥
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अर्थ द्रव्य ससारू॥
वही घड़ी सब भयो परावा। आपन सोइ जो परसा खावा॥
रहि जे हितू साथ के नेगी। सबै लागि काढ़न तेहि वेगी॥
हाथ झार जस चले जुवारी। तजा राज ह्वै चला भिखारी॥
जब लग जीव रतन सब काहा। भा विन जीव न कौडी लाहा॥

गढ़ सौंपा तेहि बादल गये टेकत बसुदेव।
छोड़ी राम अयोध्या जो भावै सो लेव॥

चौपाई

पदुमावति पुनि पहिर पटोरा। चली साथ पिय के ह्वै जोरा॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई। पूनो शशि सो अमावस भई॥
छोरे केश मोति लट छूटी। जानो रयनि नखत सब छूटी॥
सेंदुर परा जो शीस उघारी। आग लाग चहि जग अँधियारी॥
यही दिवस हो चाहत नाहीं। चलो साथ पिय दै गल बाही॥
सारस पँख नहिं जिये निरारे। हौ तुम बिन का जियो पियारे॥
न्योछावर कै तन छहराऊँ। छार होउँ सँग बहुर न आऊँ॥

दीपक प्रीत पतंग ज्यो जन्म निवाह करेउँ।
न्योछावर चहुँ पास ह्वै कंठ लाग जिय देउँ॥

अखरावट

टा ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेइ सिरजा जग अपनेइ नाईं॥
आपुहि आप जो देखइ चहा। आपन प्रभुता आप से कहा॥
सबइ जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन आपुहि देखा॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सउजा आपु अहेरू॥
आपुहि पुहुप फूल बन फूले। आपुहि भँवर वास रस भूले॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस चाखन हारा॥
आपुहि घट घट महँ सुख चाहइ। आपुहि आपुन रूप सराहइ॥

पानी महँ जस बुल्ला तस यह जग उतराइ।
एकहि आवत देखिये एकहि जात बिलाइ॥

सा सासाँ जड़ लहि दिन चारी।
ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी॥
अँध न रहहु होइ डिठिआरा।
चीन्हि लेहु जो तोहि सँवारा॥
पहले से जो ठाकुर कीजिअ।
अइसे जिअन मरन नहिं छीजिअ॥
छाड़हु घिउ अरु मछरी मासू।
सूखे भोजन करहु गरासू॥
दूध मास घिव करु न अहारू।
रोटी सान करहु फरहारू॥

यहि विधि काम घटावहु काया।
　　　　काम क्रोध तिसना मद माया॥
तब बइठउ बजरासन मारी।
　　　　गहि सुखमना पिंगला नारी॥

प्रेम तन्तु तस लागि रहु, करहु ध्यान चित बाँधि।
पारधि जइस अहेर कहँ, लागि रहइ सर साधि॥

२

महाकवि आलम

आलम

आलम सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १७१२ माना जाता है। ये औरगजेब के समय में थे और औरगज़ेब के पुत्र मुअज़्ज़म के पास रहा करते थे। इनके विषय में एक गाथा प्रसिद्ध है कि एक बार इन्होने अपनी पगड़ी रँगने के लिये शेख़ रगरेज़िन के पास भेजी। भूल से एक कागज़ का टुकडा, जिसमें आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिये बाँध दिया था, बँधा ही रह गया। पगड़ी धोते समय शेख़ की दृष्टि उस पर पड़ गई। जब उसने खोल कर देखा तो उसमें निम्नलिखित आधा दोहा लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।"

शेख़ ने उसकी इस प्रकार पूर्त्ति की।

"कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन॥"

पगड़ी रँग कर फिर वह कागज़ उसकी एक खूँट में बाँध दिया।

जब आलम को वह पगड़ी मिली और उन्होंने दोहे की पूर्ति हुई देखी तो फूले न समाये और झटपट भाग कर शेख़ के घर गये और उसे एक आना पगड़ी की रँगाई के अतिरिक्त १००० रुपया दोहे की पूर्ति के दिये। इस पर भी आलम को शान्ति न हुई। उन्होंने शेख़ के सम्मुख प्रस्ताव रक्खा कि वह इनसे विवाह कर ले। पहले तो शेख़ ने इन्कार किया परन्तु जब इन्होंने मुसलमान होना स्वीकार कर लिया तो दोनों का विवाह हो गया।

आलम और शेख़ दोनों की कविताएँ प्रेम के चमत्कार से परिपूर्ण हैं। शेख़ के गर्भ से आलम का एक पुत्र भी था। उसका नाम था "जहान"। एक दिन औरंगज़ेब के पुत्र शाहज़ादा मुअज्ज़म ने विनोद स्वरूप शेख़ से पूछा 'क्या आलम (संसार) की औरत आप ही हैं ?' शेख़ बड़ी बुद्धिमती थी। वह समझ गई कि मुअज्ज़म उससे हँसी कर रहा है, उसने तुरत उत्तर दिया—'हाँ जहाँपनाह! जहान (संसार) की माँ मैं ही हूँ।' मुअज्ज़म यह सुनकर बड़ा लज्जित हुआ और शेख़ की बुद्धि की सराहना करने लगा।

इन दोनों प्रेमियों की जितनी कविताएं मिलती हैं, सब में बड़ा चमत्कार है। शेख़ के कवित्तों में श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति उसकी अनुपम भक्ति झलकती है। आलम और शेख़ की कविताओं के संग्रह का नाम 'आलम केलि' है। इसके अतिरिक्त 'माधवानल-कामकंदला' नामक ग्रंथ भी इन्हीं का बनाया हुआ है। इधर उधर पुस्तकों में इनके कुछ फुटकर पद्य भी मिलते हैं।

'माधवानल-कामकदला' एक प्रेतात्मक कथा है जो पद्य में रची गई है।

इनकी भाषा साधारण चलती हुई और सरस है। प्रसाद और माधुर्य्य की अच्छी पुट है। इनकी पदावली प्रेमोन्मत्तकारिणी है और उनमें मृदुलता और मजुलता भरी है। इन पर मुसलमानों का भी पर्याप्त रग है। उदाहरण के लिये एक पद नीचे दिया जाता है।

दाने की न पानी की न आवे सुध खाने की,
यागली महबूब की अराम खुम खाना है।
रोज़ ही से है जो राज़ी यार की रजाय बीच,
नाज़ की नज़र तेज़ तीर का निशाना है।
सूरत चिराग रोशनाई आशनाई बीच,
बार बार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिल से दिलासा दीजै हालकी न ख्याल हूजै,
बेख़ुद फकीर वह आशिक दीवाना है॥

नोट—इस संग्रह मे हमने शेख़ के भी दो तीन कवित्त रख दिये हैं जिससे पाठक उनका भी आनन्द उठा सके।

भँवर गीत

जाके जोग जुगिया जुगत ही सों जोग जागें
भगत संजोग बसि अलख अलेख है।
सनक सनन्द सनकादि सिव मुनि जन,
सारद नारद हू के लगत निमेष है॥
"आलम" सुकवि आनि ब्रज नर भेष धर्‌यो,
ध्यावत हौ जाको ताके नाही रूप रेख है।
निगम ते अगम सुगम करि जान्यो तुम,
निरगुन ब्रह्म सोई सगुन के भेष है॥

* * *

सोई स्याम सुनहु अगाध कै समाधि ध्यावैं,
सोई स्याम रैनि जामें नित ही समाति है।
सोई स्याम पलक लगे ते स्यामताई ही मैं,
तनमय होत तब कत पछताति है॥
'आलम' सुकवि कहै सोई स्याम वन घन,
तारनु तें न्यारे नहीं कत बिललाति है।
तुम ही मै स्याम तुम स्याम ही मै रमि रही,
वादि हीं विकल विहवल भई जाति है॥

* * *

कर्म को बियापी को है धर्म कै समाधि ध्यावै,
अमु के सुनावै सु तौ ब्रह्म ही के नाम को।
कैसो जोग जुगति संजोग कैसो कहा जोग,
ज्ञान हू की गांठि कैसी ध्यानन को धाम को॥
'आलम' सुकवि इहां बृन्दावन चन्द कान्ह,
चित ये चकोर कहौ आन बिसराम को।
जहाँ रस परस सरस मुरली की घोर,
तहाँ ऊधौ सगुन निगुन कौन काम को॥

* * *

रुचिर बरन चीरु चंदन चरचि सुचि,
सरदु को चन्द चाहि चितहिं धरत है।
विविध विलास बसि रास व्रजपति प्यारे,
तेई व्रज बतियॉ उचित उचरत है॥
'आलम' सुकवि अब वैसे कान्ह ऐसे भये,
उतहि लुभाने किधौं इतही ढरत है।
मधुवन वसत मधुर मुरली की धुन,
मधुप कबहुँ माधौ सुरति करत है॥

* * *

पतियॉ पठाये अस्रुपात तौ भले पै होत,
बतियनि बिरह वितैबो कछू हाँसी है।
'आलम' निरास बैन सुने कौन जोरै नैन,
हियो को कठिन ऐसो कौन व्रजवासी है॥
ऊधो ये सॅदेसे जैये वाही चितचोर पै लै,
आपुन कठिन भये और को बिसासी है।
यहॉ लौ न आवै नैकु बॉसुरी सुनावै आनि,
विनसैगो कहा आये जो पै अविनासी है॥

* * *

ऑखियॉ भली जू ऐसे ॲसुवनि धारें, नातो
धारा पल छूटे तिहूँ देस न समाति है।
औधि है जु धूम की उसॉस रूँधि राखी है सु,
नेकु लेत धौसहू ॲध्यारी होति राति है॥
'आलम' संताप स्वेद सींचिवो अधार कौ हूँ,
झूरी है के देह फिर खेह ज्यो उड़ाति है।
छाती पै सराहौं वरु दीया की सी भाँति ऊधौ,
पानी लिखे लेखनी ज्यो वानी वरी जाति है॥

* * *

तरनिजा तट वंसीवट कुंज पुंज वीथी,
वन घन जहॉ तहॉ आनॅदुपयोगी है।
सोई रहे ध्यान ऊधौ ज्ञान को न काज कीजै,
ये तो ब्रजवासी ब्रजराज के वियोगी है॥
'आलम' सुकवि कहै तन बीच कान्ह छवि,
जोग दैन आये तुम कहा हम जोगी है।
जोग तौ सिखैये ताहि जोग की जुगति जानै,
जोग को न काज हम वंसी रस भोगी है॥

* * *

चाहती सिंगार तिन्हें सिंगी सो सगाई कहा,
औधि की है आस तौ अधारी कैसे गहिये।
बिरह अगाध तहाँ सुन्नि की समाधि कौन,
जोग काहि भावै जु वियोग दाह दहिये॥
'सेख' कहै मैन-मुद्रा मोहन जू लाये वन,
मुद्रा लाओ काननि सुने ई सूल सहिये।
लागै लग नेकहूँ कहूँ जो बैरी नीरो होय,
ऊधो एते बीच की विचारि बात कहिये॥

* * *

गाँसी जाहि सूल ताहि हाँसी न हँसाये आवै,
पासी परै पेम सुनि साँसी कहियत है।
मन गये मानस मरूरैं मारि साँस लेत,
परगट नैसकु उदासी कहियतु है॥
'सेख' कहै सोइ गति हरि बिछुरत ऊधौ,
बावरे विकल ब्रजबासी कहियतु है।
सुर बाँसी वेधत बिसारे सर ब्याधि सोई,
तातें बड़ो बधिक बिसासी कहियतु है॥

* * *

बारै तें न पलक लगत बिनु साँवरे ते,
बावरे अजान ऊधो भले उपदेस है।
ता दिन ते वन सूनो घरु है दहत दूनो,
तारनि मे ज्योति नहीं जटा भये केस हैं॥
'आलम' बिहात छिन जानो जात कोटि दिन
कौन रैन की समाई सुरति न नैस हैं।
हम हू ते स्याम दूरि स्याम हू ते हम दूरि,
वै तो आछे काछे स्याम सखी मैले भेस हैं॥

*　　　*　　　*

बूझि कै अबूझ ऊधौ होत ऐसी बूझियैरे,
जो पै ऐसी बूझ तौ अबूझ किन बूझै जू।
झखत झुरत झखकेतऊ खिझावै झुकि
तुम झुकवत झूठो जूझ कौन जूझै जू॥
राजिव नयन मेरे 'आलम' रहे कै ध्यान,
रीझ की रहनि मे अबूझ कहा रूझै जू।
प्रगटि जुगति जाहि जीजियतु ऐसी सुनि,
भोग की भुगति पायें जोग काहि सूझै जू॥

*　　　*　　　*

सीत रितु भीत भई छाती राती ताती तई
ऐसे ताप, तिय तन तये हैं न तवैंगे।
'आलम' अनिल इतराय कै कलिन मिलि,
दीन्हों है कलेस सुधि आये दूनो दवैंगे॥
ग्रीषम ते ऊषम है विषम अषाढ़ ऊधौ,
माधौ जो न आये मन भ्रमर ज्यो भवैंगे।
बधिवे को बूँदनि वियोगिनी को वीनि बीनि,
आये वैरी बादर बिसासी विस बवैंगे॥

*　　　*　　　*

जमुना-कुंज

अरबिंद पुंज गुंज डोर भौर ही व्रती,
हलोर ओर थोर ज्यों निसा चलत चंदनी।
निकुंज फूल मौल बेलि छत्र छाँह से धरे,
तटी कलोल कोक पुंज सोक संक दंदनी॥
'आलम' कवित्त चित्त रास के विलास तें,
प्रकास वंदना करी विलोकि विस्व-चंदनी।
समीर मंद मंद केलि कंद दोष दंद यो,
अनंद नंद नंद के बिराजे हंस नंदनी॥

*　　　*　　　*

लता प्रसून डोल वोल कोकिला अलाप केकि,
लोल कोक कंठ त्यो प्रचंड भृंग गुंज की।
समीर वास रास रंग रास के विलास बास,
पास हंसनन्दिनी हिलोर केलि पुञ्ज की॥
'आलम' रसाल वन गान ताल काल सो,
बिहंग वाय वेगि चालि चित्त लाज लुंज की।
सदा वसंत हंत सोक ओक देव लोक ते,
विलोकि रीझि रही पाँति भाँति सों निकुंज की॥

*　　*　　*

गंगा-वर्णन

जौही भौंह भीजी आँखि ताकि है जु तीजिये से,
जीबी कहे ज्याइहै अमर पद आइ लै।
अंबर पखारे ते दिगंबर वनैहै तोहि,
छलक छुआये गज छाल तन छाइ लै॥
'सेख' कहै आपी कोऊ जैनी है कि जापी बड़ो,
पापी है तो नीर पैठि नागन लवाय लै।
अंग बोरि गंग मे निहंग ह्वै कै वेगि चलि,
आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइ लै॥

*　　*　　*

नीके न्हाइ धोइ धूरि पैठो नेकु बैठो आनि,
धूरि जटि गई धूरिजटी लौ भवन मे।
पैन्हि पैठो अंबर सु निकस्यौ दिगम्बर ह्वै,
हग देखो भाल में अचम्भो लाग्यौ मन में ॥
जैसो हर हिमकर धरे औ गरे गरल,
भारी धरु डरु वरु छांड्यौ एक खन मे।
देखे दुति ना परत पाप रेते पा परत,
सापरे ते सुरसरि सॉप रेंगे तन में ॥

* * *

शिव को कवित्त

गोरख सुढौरी लिये संभु ताको मत दिये,
आपुन अकेलो संग गौरी तिहि लोग ना।
वरुनी विभूति बार बार लै लै मुख लावे,
उरहू लगावै पुनि भावै कछू भोग ना॥
अधारी लै धौरे धरी सपति धतूरा भरी,
वृषभ लै चलै जाय कोऊ ताको सोग ना।
जटा छिटकाये छवि छोनी में बिछाये छाल,
बासुकी विरागी वाकी टेक बैठो जोग ना॥

* * *

देवी को कवित्त

भौन के दरस पुन्य-भौन मेरे नेरे आयो,
छत्र-छाँह परसत छत्रनि सो छयो हौ।
मंगला के मंगल ते मंगल अनेग भये,
हिंगलाज राखी लाज याहि काज नयो हौं ॥
सेषमति 'सेख' ही सुसेष की सी दीनी तुम,
रावरे सिखाये सिख ढिग आनि लयो हौ।
दुर्गा देवी तेरे इ दया ते दुर्ग नाँघि आयों,
पारवती तुम्हें सुमिरत पार भयो हौ॥

*　　*　　*

कृष्ण बाल-लीला वर्णन

पालन खेलत नन्द ललन छलन बलि,
गोद लै लै ललना करति मोद गान है।
'आलम' सुकवि पल पल मैया पावै सुख,
पोषति पीयूष सु करत पय पान हैं॥
नन्द सों कहत नन्द रानी हो महर ! सत-
चन्द की सी कलनि बढ़त मेरे जान है।
आइ देख आनँद सो प्यारे कान्ह आनन में,
आन दिन आन घरी आन छबि आन हैं॥

*　　*　　*

देहौं दधि मधुर धरनि धर्‍यो छोरि खैहै।
धाम ते निकसि धौरी धेनु धाइ खोलि है।
धौरि लौटि ऐहैं लपटै है लटकत ऐहै,
सुखद सुनैहै बैन बतियाँ अमोलि है॥
'आलम' सुकवि मेरे लालन चलन सीखै,
बलन की बाँह ब्रज गलिनि मे डोलि है।
सुदिन सुदिन दिन तादिन गिनैगी माई,
जा दिन कन्हैया मोसो मैया कहि बोलि है॥

* * *

३

महाकवि केशव

जीवन-परिचय

केशवदास मनाढ्य ब्राह्मण थे। आपका जीवन काल सवत् १६१२ मे १६७४ तक माना जाता है। ओडछा-नरेश महाराजा रामसिह के भाई इद्रजीतसिह इनका विशेष आदर करते थे। कहते हैं कि इन्होंने उसका एक करोड रुपया जुरमाना बीरबल द्वारा अकबर से माफ करा दिया था। कथा इस प्रकार है—

ओड़छा-नरेश इन्द्रजीतसिह के यहाँ सगीत का अखाड़ा था। उनके यहाँ ६ वेश्याएँ थीं, जिनमें राय प्रवीन प्रधान थी। प्रवीन इन्द्रजीत की प्रेमिका थी। वेश्या होने पर भी वह पतिव्रता थी। अकबर ने उसके रूप लावण्य का वर्णन सुन उसे अपने यहाँ आने के लिए बुलावा भेजा। उस समय प्रवीन ने इन्द्रजीत की सभा में जाकर यह कवित्त पढ़ा—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज,
सासन सों सिगरी मति गोई।

देह तजौ कि तजौ कुल कानि,
हिये न लजौ लजिहैं सब कोई ॥
स्वारथ औ परमारथ को गथ,
चित्त विचार कहौ अब सोई ।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु,
मेरो पतिव्रत भग न होई ॥

इस बात पर इन्द्रजीत ने उसे अकबर के यहाँ न भेजा । तब अकबर ने क्रोध में आकर उन पर एक करोड़ रुपया जुरमाना कर दिया । उसे माफ कराने के लिये केशवदास जी आगरे आये और महाराज बीरबल से मिलने के लिये उनके घर गये । बीरबल भीतर थे । उन्होंने कहला भेजा कि मेरे पेट में अजीर्ण हो गया है, बाहर नहीं आ सकता, फिर आना । केशव ने उत्तर सुनकर यह दोहा लिख भेजा :—

जस जारथौ सब जगत कौ, भयो अजीरन तोय ।
अपजस की गोली दउँ, तत्कालहि सुधि होय ॥

इसको पढ़ते ही बीरबल बाहर निकल आये और केशव ने उनको देखते ही यह सवैया पढ़ा—

पावक पछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दस चारी ।
केशव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी ॥
कै बर बीर बली बर को सु भयो कृत कृत्य महाव्रत धारी ।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दुवो करतारी ॥

इस छन्द को सुनकर राजा बीरबल इतने प्रसन्न हुए कि

उन्होंने छ' लाख दाम की हुण्डियाँ, जो उनके दुशाले के कोने में बँधी थीं, खोलकर उसी समय केशव जी को दे दीं । इसके धन्यवाद में केशव ने यह छद पढ़ा—

केशवदास के भाल लिख्यौ विधि रक को अक बनाय संवारथौ ।
धोये धुवै नहि छूटो छुटै बहु तीरथ जायकै नीर पखारथौ ॥
ह्वै गयो रंकते राव तवै जब वीरबली नृपनाथ निहारथौ ।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यौ मुस चारथौ ॥

तब बीरबल ने अति प्रसन्न होकर फिर कहा, जो माँगना हो, सो माँगो ।

केशव ने दो बातें माँगी । एक बादशाह से कहकर इन्द्रजीत का जुरमाना माफ कराया जावे और दूसरा दरबार में बेरोक टोक आने की आज्ञा मिले । बीरबल ने दोनो ही बातें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लीं । और बादशाह अकबर से कहकर इन्द्रजीतसिह का जुरमाना माफ करा दिया । तब से केशवदास का आदर इन्द्रजीत के दरबार में और भी अधिक बढ़ गया ।

आप रसिक भी बहुत थे । कहते हैं कि वृद्धावस्था में एक बार एक कूएँ पर खड़ी कुछ नवयुवतियों ने इन्हें 'बाबा' शब्द से सबोधन किया । तब इन्होंने निम्नलिखित दोहा कहा—

केशव केसन अस करी, जस अरि हूँ न कराहि ।
चन्द्रबदनी मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहि ॥

इनके ग्रथों में रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञान-गीता और वीरसिंहदेवचरित्र मुख्य हैं । अंतिम ग्रथ की साहित्यिक प्रौढ़ता उच्च कोटि की नही है। रसिकप्रिया में रसों का वर्णन है। यह ग्रथ उच्च शैली का है। कविप्रिया एक उत्कृष्ट रीति ग्रथ है। हिन्दी में पहला यही भारी रीति ग्रथ है, जिससे केशव को आचार्य की पदवी मिली । इसमें गुण, दोष, कविता की जाँच, अलकार, बारा-मासा, नख-शिख और चित्र काव्य के वर्णन हैं । रामचन्द्रिका में रावण वध पर्यंत इधर, तथा लवकुशी में उधर, साहित्य उत्कृष्ट है, किन्तु शेष ग्रथ तादृश रोचक नही ।

केशवदास की भाषा सस्कृत और कुछ बुन्देलखण्डी शब्द धारण किए हुए व्रजभाषा है। छद आप शीघ्रता से बदलते जाते हैं जिससे कथा में अरोचकता नही आने पाती। रचना में श्रेष्ठ छन्दों का बाहुल्य है। आप सर्वव्यापिनी दृष्टि के कवि थे । सस्कृत शब्द एव भाव मिश्रित होने से आपकी रचना कुछ कठिन होती थी। उसमें कहीं २ श्रुतिकटु शब्द भी आ जाते थे । आप श्रुतिकटु का विचार शब्दो में न करके केवल अर्थ में करते थे । विविध छदो में कथाप्रणाली की रीति आप ही ने रामचन्द्रिका द्वारा चलाई। आपकी रचना का मान प्राचीन काल से होता आया है । 'सूर सूर तुलसी शशि, उडुगन केशवदास' का कथन इनके विषय में है। रामचन्द्रिका ग्रथ भाषा काव्य का शृगार है। भाषा साहित्य में तुलसी-कृत रामायण के सिवा और कोई ऐसा रोचक ग्रथ नहीं है ।

केशवदास सदैव महाराजों में रहे, अत. इन्होंने बडे

आदमियो की बातचीत और उनके साज-सामान का बहुत ही ठीक वर्णन किया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि केशवदास महाकवि थे। इनकी कोई २ कविता अन्य कवियो की कविता के सदृश, सुनते ही समझ में नहीं आ जाती। उसके लिये कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है। परतु जितना ही उस पर अधिक विचार करें, उतनी ही मिठास भी अधिक बढ़ती जाती है।

लंका दहन

जटी अग्नि-ज्वाला अटा स्वेत हैं यों;
सरत्काल के मेघ संध्यासमै ज्यो।
    लगी ज्वाल-धूमावली नील राजै;
    मनो स्वर्न की किंकिनी नाग साजै।

लसैं पीत छुत्री मढ़ी ज्वाल मानौ;
डके ओढ़नी लंक बच्छोज जानौ।
    जरैं जूह-नारी चढ़ी चित्रसारी,
    मनो चेटका मैं सती सत्वधारी।

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े,
मनो ईस-रोषाग्नि मे काम डाढ़े।
    कहूँ कामिनी ज्वाल-मालानि भोरैं,
    तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं।

कहूँ भौन-राते रचे धूम छाहीं;
ससी सूर मानो लसे मेघ माहीं।

जरै सस्त्रसाला मिली गंधमाला;
मलै अद्रि मानो लगी दाव ज्वाला।

चली भागि चौहूँ दिसा राजधानी,
मिली ज्वाल माला फिरै दुःखहानी।

मनो ईस बानावली लाल लोलै,
सबै दैत्य जायान के संग डोलै।

लंक लगाइ दई हनुमान विमान बचे अति उच्चरुखी है,
पाचि फटै उचटै बहुधा मनि, रानी रटै बहु पानी दुखी है।
कंचन को पघिल्यो पुर पूर, पयोनिधि में पसरेति सुखी है,
गंग हजार मुखी गुनि 'केसौ' गिरा मिलि मानो अपार मुखी है॥

कहूँ किन्नरी किंगरी लै बजावैं,
सुरी, आसुरी बाँसुरी गीत गावै।
कहूँ जच्छिनी पच्छिनी लै पढ़ावै,
नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं॥

पियैं एक हाला, गुहैं एक माला,
बनी एक बाला नचैं चित्रसाला।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को
पढ़ावैं सुआ लै सुकी सारिका को॥

फिर्‌यो देखिकै राजा साला सभा को;
रह्यो रीझि कै वाटिका की प्रभा को।
फिरौ वीर चौहूँ चितै सुद्ध गीता;
विलोकी भली सिसुपा-मूल सीता॥

हिमांसु सूर-सो लगे सु वात वज्र-सी वहै,
दिसा लगै कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै।
विसेष कालराति-सी कराल राति मानिये,
वियोग सील को न काल लोकहार जानिये॥

पतिनी पति विनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मंद।
चन्द बिना ज्यों जामिनी, ज्यो विन जामिनी चन्द॥

सबस्त्रा सबै अंग सिंगार सोहैं;
बिलोके रमा, देव, देवी विमोहैं।

पिता-अंक ज्यो कन्यका सुभ्र गीता,
लसै अग्नि के अंक त्यों सुद्ध सीता।

महादेव की नेत्र की पुत्रिका सी,
कि संग्राम की भूमि मैं चंडिका सी।

मनो रत्न-सिंहासनस्था सची है,
किधौं रागिनी राग पूरे रची है।

गिरा पूर मे है पयो-देवता-सी,
किधौ कंज की मंजु सोभा प्रकासी।

किधौं पद्म ही मे सिफाकंद सोहै,
किधौं पद्म के कोस पद्मा विमोहै।

कि सिंदूर-सैलाग्र मैं सिद्ध-कन्या,
किधौं पद्मिनी सूर संजुक्त धन्या।

सरोजासना है मनौ चारु बानी,
जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी।

मनौ ओषधी-वृन्द मे रोहिनी सी;
कि दिग्दाह मैं देखिए जोगिनी सी।

धरा-पुत्र ज्यौं स्वर्नमाला प्रकासै;
मनो ज्योति सी तच्छका भोग भासै।

आसावरी मानिक-कुंभ सोभै,
असोक-लग्ना बन-देवता सी।
पालास-माला-कुसुमालि मध्ये,
बसंत-लक्ष्मी सुभ-लच्छना सी॥

आरक्त-पत्रा सुभ चित्र-पुत्री,
मनौ बिराजै अति चारु बेखा।
संपूर्न सिंदूर-प्रभास कैधौं,
गनेस-भाल-स्थल चन्द्र रेखा॥

फुटकर पद्य

भूषण सकल घनसारही के घनश्याम,
कुसुम कलित केशर ही छवि छाई सी।
मोतिन की लरी सिर कंठ कंठ माल हार,
और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी॥
चन्दन चढ़ाये चारु सुन्दर शरीर सब,
राखी जनु सुभ्र सोभा वसन बनाई सी।
सारदा सी देखियतु देखो जाइ 'केशोराइ,'
ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाइ मे अन्हाई सी॥

सवैया

पंडित पुत्र, सुधी पतिनी जु पतिव्रत प्रेम परायन भारी।
जानै सबै गुण, मानै सबै जग, दान विधान दयाउर धारी॥
'केशव' रोगन ही सो वियोग, संयोग सुभोगन सो सुखकारी।
सॉच कहे, जग मॉह लहे यश, मुक्ति यहै चहुँ वेद विचारी॥

* * *

पातक हानि पिता सँग हारिबो गर्व के शूलन ते डरिये जू।
तालनि को बँधिबो बधरोर को नाथ के साथ चिता जरिये जू॥
पत्र फटे ते कटे रिन 'केसव' कैसेहु तीरथ में मरिये जू।
नीकि लगै ससुरारि की गारि औ डॉड़ भलो जो गया भरिये जू॥

* * *

बाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित,
मित्र मति हीन, सूम स्वामी उर आनिये।
परवश भोजन, निवास वास कुकुरन,
वरषा प्रवास, 'केशोदास' दुखदानी ये॥
पापिन के अंग संग, अंगना अनंग वश,
अपयश युत सुत चित हित हानि ये।
मूढ़ता, बुढ़ाई, व्याधि, दारिद, झुठाई, आधि,
यहई नरक नरलोकनि बखानिये॥

* * *

छप्पय

धिक मंगन विन गुणहिं, गुण सु धिक सुनत न रीझिय।
रीझ सु धिक विन मौज, मौज धिक देत सु खीझिय॥
दीबो धिक विन साँच, साँच धिक धर्म न भावै।
धर्म सु धिक विन दया, दया धिक अरि कहँ आवै॥
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहँ न उदार मति।
मति धिक 'केशव' ज्ञान विनु, ज्ञान सु धिक विनु हरि भगति॥

* * *

सवैया

पाप की खिद्धि सदा ऋण वृद्धि सुकीरति आपनी आप कही की।
दुःख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की संतति संतत फीकी॥
वेटी को भोजन भूषण राँड़ को केशव प्रीति दसा पर ती की।
युद्ध में लाज दया अरि को अरु ब्राह्मण जाति सो जीति न नीकी॥

* * *

कवित्त

लूटिवे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियत,
तोरिवे को मोह तरु तोरि डारियतु है।
घालिवे के नाते गर्व घालियत देवन के,
जारिवे के नाते अघ ओघ जारियतु है॥
बाँधिवे के नाते ताल बाँधियत 'केशोदास',
मारिवे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु
हारिवे के नाते आन जन्म हारियतु है॥

* * *

इन्द्रजीत वर्णन

गुन मनि आगररु धीरज को सागर,
उजागर धवलधर धर्मधुर धाये जू।
खल तरु तोरिवे को राजै गजराज सम,
अरि गजराजनि को सिंह सम गायेजू॥
वामिन को वाम देव कामिन को कामदेव,
रन जय थंभ रामदेव मन भाये जू।
काशीकुल कलश सुवृद्ध जंबूदीप दीप,
'केशवदास' कल्पतरु इन्द्रजीत आयेजू॥

* * *

वानी ज्यों गँभीर मेघ सुनत सखा शिखीन,
सुख अरि उरनि जवासे ज्यों जरत है।
जाके भुजदण्ड भुजलोक के अभय ध्वज,
देखि देखि दुर्ज्जन भुजंग ज्यों डरत है॥
तोरिवे को गढ़ तरु होत है शिला स्वरूप,
राखिबे को द्वारनि किवॉर ज्यों अरत है।
भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग,
जाके राज 'केशवदास' राज सा करत है॥

* * *

राम वर्णन

कीन्हे छत्र छितिपति 'केशोदास' गणपति,
दसन वसन वसुमति कह्यो चारु है।
विधि कीन्हो आसन शरासन असम शर,
आसन को कीन्हो पाकशासन तुषारु है॥
हरि कीन्ही सेज हरि प्रिया कियो नाकमोती,
हर कीन्हो तिलक हराहू कियो हारु है।
राजा दशरथ सुन सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को श्रृंगारु है॥

* * *

देह द्युति हलधर कीन्ही निशिकर कर
जगकर बानी वर विमल विचारु है।
मुनिगन मनमानि द्विजन जनेऊ जानि,
कर शंख शंखपानि सुखद अपारु है॥
'केशोदास' सविलास विलसै विलासनीनि,
सुख मुख मृदुहास उदित उदारु है।
राजा दशरथ सुत सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को श्रृंगारु है॥

* * *

नारायण कीन्ही मनि उर अवदात गनि,
कमला की वानी भनि शोभा शुभ सारु है।
'केशव' सुरभि केश शारदा सुदेश वेश,
नारद को उपदेश विशद विचारु है॥
शौनक ऋषी विशेखि शीरष शिखानि लेखि,
गंगा की तरंग देखि विमल विहारु है।
राजा दशरथ-सुत सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को शृंगारु है॥

* * *

जरावर्णन

विलोकि शिरोरुह श्वेत समेत तनोरुह 'केशव' यों गुण गायो।
उठे किधौं आयु कि औधि के अंकुर शूल कि सुःख समूल नशायो॥
लिख्यो किधौं रूप के पाणि पराजय रूप को भूप कुरूप लिखायो।
जरा शर पंजर जीव जर्‍यो कि जरा जरकंबर सो पहिरायो॥

* * *

अभिराम सचिक्कन श्याम सुंगधहु धामहुते जे सुभाइक के।
प्रतिकूल सबै दृगशूल भये किधौं शाल शृंगार के घाइक के॥

निजदूत अभूत जरा के किधौ अविताली जरा जनलाइक के।
सितकेश हिये यहि वेश लसै जनु साइक अंतक नाइक के॥

* * *

लसैं सित केश शरीर सबै कि जरा जस रूपे के पानी लिखायो।
सुरूप को देश उदात कै कीलनि कीलितु कै कै कुरूप नसायो॥
जरै किधौ 'केशव' व्याधिनि की किधौं ओपि के अंकुर अंत न पायो।
जरा शर पंजर जीव जर्‍यो कि जरा जरकंवर सो पहिरायो॥

* * *

संपूर्ण वर्णन

हरिकर मंडन सकल दुख खंडन,
मुकुर महिमंडल के कहत अखंड मति।
परम सुवास पुनि पीयुष निवास, परि-
पूरण प्रकाश 'केशौदास' भू अकासगति॥
वदन मदन कैसो श्री जू के सदन शुभ,
सोदर शुभोदर दिनेशजू के मित्र अति।
सीता जी के मुख सुखमा के उपमा को सखि,
कोमल कमल नहि अमल रजनि पति॥

* * *

मंडल वर्णन

मणिमय आलवाल थलज जलज रवि-
मंडल मे जैसे माति मोहै कवितानि की।
जैसे सविशेष परिवेष मे अशेष रेख,
शोभित सुवेष सोम सीमा सुखदानि की॥
जैसे बंक लोचन कलित कर कंकणानि,
बलित ललित द्युति प्रकट प्रभानि की।
'केशौ दास' तैसे राजै रास में रसिकराइ,
आस पास मंडली बिराजै गोपिकान की॥

* * *

संग्राम वर्णन

शोणित सलिल नर वानर सलिल चर,
गिरि हनुमन्त विष विभीषण डारयो है।
चॅवर पताका बड़ी वाड़वा अनल सम,
रोग रिपु जामवन्त 'केशव' विचारयो है॥
वाजि सुरवाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहारयो है।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र कुश लव,
जीतिकै समर सिंधु साँचेहू सुधारयो है॥

* * *

४

महाकवि भक्त रसखान

जीवन-परिचय

रसखान जाति के मुसलमान थे और किसी कारण अंत में हिंदु धर्म के अनुयायी हो गये थे। इनके जन्म तथा मरण की तिथियाँ अभी तक निश्चित रूप से जानी नहीं जा सकी हैं। किंतु इनकी पुस्तक 'प्रेमवाटिका' के निम्नलिखित दोहे से यह अवश्य पता चलता है कि उनका समय विक्रम की १७ वीं शताब्दी के लगभग है। जैसे—

विधु, सागर, रस इन्दु सुभ, बरस सरस रसखानि।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरख बखानि॥

अर्थात् प्रेमवाटिका की रचना सं० १६७१ में की गई थी। इस पुस्तक में निम्नाङ्कित दोहों—

देखि गदर दिन साहबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा-बस की, ठसक छोरि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहि आइ गोबरधन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम॥

तोरि मानिनी में हियो, मोरि मोहिनी मान।
प्रेम देव की छविहि लखि, भये मियाँ रसखान ॥

—से यह भी विदित होता है कि ये दिल्ली-निवासी किसी राजवंश में उत्पन्न हुए थे और युवावस्था में अपनी प्रेमिका पर पूर्ण रूप से आसक्त भी थे। करुणार्द्र हृदय होने के कारण, जब दिल्ली की दुर्गति इनसे नहीं देखी गई तब उन्होंने अपनी उच्च कुल-सुलभ विलास-प्रियता को तिलाञ्जली दे दी, एवं साथ ही राजधानी का भी परित्याग कर दिया। ऐसा करते समय अपनी प्रियतमा को छोड़ने का पश्चाताप इन्हें कुछ दिनों तक अवश्य रहा होगा। परंतु प्रेम की धुन में घूमते टहलते, जब ये बृन्दावन तथा गोवर्धन गिरि के निकट पहुँचे और वहां अशेष सौंदर्य संपन्न श्री राधा माधव की युगल मूर्ति के दिव्य दर्शन किये. तब उनका प्रिया परित्याग का भी मोह जाता रहा। फिर तो वे श्रीकृष्ण की शरण में रहकर अनन्य भक्त रसखान ही हो गये। इन्होंने 'सुजान रसखान' नामक अपनी पुस्तक में एक स्थान पर यह भी लिखा है कि देश तथा विदेश के बहुत से नरेशों को देखा। उनके रीझने या खीझने से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ सकता और न वे मेरी कसक ही मिटा सकते हैं। बस 'लाड़लो छैल वही तो अहीर को, पीर हमारे हिये की हरैगो' (पद्य १०५, पृष्ठ ३२)। परन्तु इतने से ही यह निश्चित नहीं हो सकता कि रसखान भी कभी अपने समसामयिक कवियों की भाँति किसी रजवाड़े की छत्र-छाया में रह चुके थे। अस्तु!

रसखान की पुस्तकों को देखने से पता चलता है कि ये

वास्तव में एक प्रेमी जीव थे जिन्हें विरक्ति ने लौकिक प्रेम सरिता से बाहर निकाल कर श्री भगवान् कृष्णचन्द्र के अलौकिक भक्ति सागर में डाल दिया था। इनके प्रत्येक पद्य में प्रेममयी भक्ति का ही अनोखा रग दीख पडता है। इस कारण, अपने समय के बहुत से अन्य भक्तों की भाँति इन्हें अपने इष्टदेव की न तो कोई लबी चौड़ी प्रशसा करनी है और न मुक्ति अथवा वैकुण्ठवास की चाह में आत्मग्लानि से सने हुए विनय के पद ही निर्माण करने हैं। ये तो साधारण अहीर के घर खेल-कूद करने, तथा वृन्दावन में गाय चराते समय विविध लीलाओं में सदा दत्तचित्त रहने वाले कृष्ण को निर्निमेष दृष्टि से ही केवल देखते रहना चाहते हैं। उनकी धारणा है कि अनेक जन्मों तक भी यदि मैं उसे देखता रहूँ तो भी मेरे नयनो को तृप्ति नहीं मिल सकती।

रसखान, हिंदुओं के धार्मिक ग्रथों से भी बहुत कुछ परिचित थे। उन्होंने अपने 'सुजान रसखान' में एक एक पद्य गगा तथा शिव की स्तुति में भी लिखा है। परंतु इनकी किसी भी पुस्तक में इसलाम धर्म का प्रभाव कदाचित् ही देखने को मिलेगा। ये साहित्य के मुख्य २ अगों के जानकार ज्ञात होते हैं। कोरे शृगार रस की कई एक कवितायें भी इनके सुजान रसखान नामक ग्रथ में मिलती हैं। दो चार स्थलों पर तो भाव कुछ अश्लीलता तक आ गये हैं किंतु ये सब कुछ होते हुए भी भक्त रसखान की कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। इनके भाव अन्तस्तल से प्राकृतिक झरने की धारा के समान स्वभावत. निकल कर प्रवाहित हुए हैं और भाषा इनकी ऐसी मँजी

हुई है कि व्यर्थ के प्रयोगों का कहीं नाम तक नहीं । मुहावरे की अधिकता तथा दैनिक व्यवहारों के साधारण उल्लेख से रसखान की कविता में सब कहीं प्रसाद गुण के चमत्कार दीख पड़ते हैं ।

"२५२ वैष्णवो की वार्त्ता" मे लिखा है कि युवावस्था मे ये एक बनिये के पुत्र पर आसक्त थे। रात दिन उसके साथ फिरा करते थे। यहाँ तक कि उसकी जूठ तक खाने में भी इन्हें सकोच न था। लोग इन पर हँसते थे परन्तु इन्हे किसी की परवाह न थी। एक बार चार वैष्णव परस्पर बाते कर रहे थे कि ईश्वर से ऐसा प्रेम करना चाहिये जैसा रसखान उस लडके से करता है, इन्होंने सहसा सुन लिया और उनके पास जाकर कारण पूछा। वैष्णवों ने जब इन्हें कृष्ण का सौन्दर्य बतलाया तो इन्होंने उस लड़के को तो छोड़ दिया और भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करने लगे।

ग्वालन संग जैबो बन ऐबो सुगाइन संग,
हेरि तात गैयों हा हा नैन फरकत हैं।
ह्याँ के गज मोती माल वारौं गुञ्ज मालन पै,
कुञ्ज सुधि आये हाथ प्रान धरकत हैं॥
गोबर को गारो सुनौ मोहि लगै प्यारो कहा,
भये महल सोने को जटत मुरकत हैं।
मंदर ते ऊँचे यह मन्दिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरो हिये खरकत हैं॥१॥

* * *

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥

'रसखानि' कबौं इन आँखिन सौं ब्रज को बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥२॥

*　　　*　　　*

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुन्यौ चौगुनो चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितूँ, वह कैसो सरूप ओ कैसो सुभायन ॥
टेरत हेरत हारि परयो 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुञ्ज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन ॥३॥

*　　　*　　　*

मानस हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिन्दी कूल कदंब की डारन ॥४॥

*　　　*　　　*

उनही के सनेहन सानी रहैं, उनही के जु नेह दिवानी रहैं।
उनही की सुनै न औ बैन त्यो सैन, सो चैन अनेकन ठानी रहैं ॥
उनहीं संग डोलन में 'रसखानि', सबै सुख-सिंधु अघानी रहै।
उनहीं बिन ज्यों जल-हीन ह्वै मीन सी, आँखि मेरी अँसुवानी रहैं ॥५॥

*　　　*　　　*

प्राण वही जो रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहि वाहि रिझायो ।
सीस वही जिनके परसे पद, अंक वही जिन वा परसायो ॥
दूध वही जु दुहायो री वाहि, दही सु सही जु वही ढरकायो ।
और कहाँ लौ कहौं 'रसखानि' री, भाव वही जु वही मन भायो ॥६॥

* * *

पूरब पुन्यनि ते चितई जिन, ये अँखियाँ मुसकानि भरी जू ।
कोउ रहीं पुतरी सी खरी कोउ घाट परी कोउ बाट परी जू ॥
जे अपने घर ही 'रसखानि', कहै अस हौंसनि जानि मरी जू ।
लाल जे बाल बिहाल करी, ते बिहाल करी न निहाल करी जू ॥७॥

* * *

जा दिन से निरख्यो नँदनंदन, कानि तजी सब बंधन छूट्यो ।
चारु विलोकनि की निसि मार, सम्हार गई मन मार ने लूट्यो ॥
सागर को सरिता जिमि धावति, रोकि रहे कुल को पुल टूट्यो ।
मत्त भयो मन संग फिरै, 'रसखानि' सरूप सुधारस घूट्यो ॥८॥

* * *

सोहत है चँदवा सिर मौर के, जैसिये सुन्दर पाग कसी है ।
तैसिये गो रज भाल विराजति, जैसी हिये बनमाल लसी है ॥

'रसखानि' विलोकत वैरि भई, दृग मूँदि कै ग्वालि पुकारि हँसी है।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा वह, मूरति नैननि माँझ बसी है ॥९॥

*　*　*

ब्याही अनब्याही ब्रज माहीं सब चाही, तासों,
　　दूनी सकुचाई दीठि परै न जुन्हैया की।
नेकु मुसुकानि 'रसखानि' की विलोकत ही,
　　चेरी होत एक वार कुंजन दिखैया की॥
मेरो कह्यो मानि अन्त मेरो गुन मानि है री,
　　प्रात खान जात ना सकात सौंह भैया की।
माई की अँटक तौ लौं सासु की हटक जौ लौं,
　　देखी न लटक मेरे दूलरू कन्हैया की ॥१०॥

*　*　*

धूर भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर ऊपर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग, पैजनि बाजति पीरी कछोटी॥
वा छवि को 'रसखान' विलोकत, वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी ॥११॥

*　*　*

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावै।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड, अछेद अभेद सुवेद बतावै॥
नारद से सुक व्यास रहैं, पचिहारि तऊ पुनि पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै॥१२॥

* * *

कौन ठगौरी भरी हरि आजु, बजाई है बाँसुरिया रँग भीनी।
तान सुनी जिनही तिनही तवही तिन लाज विदा करि दीनी॥
घूमैं घड़ी घड़ी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहा बाल प्रवीनी।
या ब्रज मंडल में 'रसखानि' सु कौन वहू जो लटू नहिं कीनी॥१३॥

* * *

दूध दुह्यो सीरो परयो, ताको न जमायो करयो,
जामन दयो सो धरयो धरयो ही खटायगो।
आन हाथ आन पाह सबही के तबही के,
जबहीं के 'रसखानि' काननि सुनाइगो॥
ज्यौं ही नर त्यौं ही नारी तैसीये तरुन वारी,
कहिये कहारी सब ब्रज विललाइगो।
जानिये न आलि, यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो॥१४॥

* * *

मेरे सुभाय चितैबे को माइरी, लाल निहारि कै बंसी वजाई।
वा दिन ते मोहि लागि ठगौरी सी, लोग कहैं कोउ बावरी आई॥
यों 'रसखानि' घिरयो सिगरो ब्रज, जानत वे कि मेरो जियराई।
जो कोऊ चाहै भलौ अपनौ तौ, सनेह न काहू सो कीजिए माई ॥१५॥

* * *

छीर जो चाहत चीर गहै पै जू लेहु न केतक छीर अचैहो।
चाखन के मिस माखन माँगत, खाहु न माखन केतक खैहो॥
जानत हौं जिय की 'रसखानि' सु काहे को एतिक बात बढ़ैहो।
गोरस के मिस जो रस चाहत, सो रस कान्ह जू नेकु न पैहो ॥१६॥

* * *

दानी भये नये माँगत दान, सुनै जु पै कंस तो बंधन जैहो।
रोकत हौ बन मे 'रसखानि', पसारत हाथ घनो दुख पैहो॥
टूटै छरा बछरादिक गोधन, जो धन है सो सबै धन दैहो।
जैहे जो भूषन काहू सखी को, तो मोल छला के लला न विकैहो ॥१७॥

* * *

काहू सो माई कहा कहिये, सहिये जू सोई 'रसखानि' सहावै।
नेम कहा जब प्रेम कियो तब, नाचिये सोई जो नाच नचावै॥

चाहत हैं हम और कहा सखि, क्योंहूँ कहूँ प्रिय देखन पावैं।
चेरिया सों जु गुपाल रच्यो तौ, चलो री सबै मिलि चेरी कहावैं ॥१८॥

* * *

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी ॥
भाव तो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरान धरौंगी ॥१९॥

* * *

खञ्जन नैन फँदे पिंजरा छवि नाहि रहै थिर कैसहूँ माई।
छूटि गई कुल-कानि सखी, रसखानि लखी मुसिकानि सुहाई ॥
चित्र कढ़े से रहे मेरे नैन न बैन कढ़े मुख दीनि दुहाई।
कैसी करौं जिन जाव अली, सब बोलि उठे यह बावरी आई ॥२०॥

* * *

अति लोक की लाज समूह मैं घेरि कै, राखि थकी भव-संकट सों।
पल मैं कुल-कानि की मैंड़ नखी नहिं रोकि सको पलके पट सों ॥
रसखानि सो केतो उचाटि रही उचटी न सँकोच की औचट सों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही अँटकी अखियाँ लटकी लट सों ॥२१॥

* * *

कानन पै अंगुरी रहिबो जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै।
मोहनि तानन सों रसखानि, अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै॥
टेरि कहौ सिगरे ब्रज लोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसुकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै॥२२॥

* * *

अबही गई खिरक गाय के दुहाइबे को,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनि यो पाननि की।
कोऊ कहै छरी कोऊ भौन घटी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की॥
सास ब्रत ठानै नन्द बोलत सयानै धाइ,
दौरि-दौरि जानै मानौ खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसै मुरझानि पहिचानि कहूँ,
देखि मुसकानि वा अहीर रसखानि की॥२३॥

* * *

छूट्यो गेह काज लोक लाज मन मोहनी को,
छूट्यो मनमोहन को मुरली बजाइबो।
देखो दिन द्वै मे रसखानि बात फैलि जैहै,
सजनी कहाँ लौं चन्द हाथ न दुराइबो॥

कालिही कलिन्दी-तीर देख्यो मैं अचानक ही,
दोउन को दोउ मुरि मृदु मुसक्याइबो।
दोऊ परै पैयां दोऊ लेत हैं बलैयां,
उन्हे भूल गई गैयां इन्हें गागर उठाइबो ॥२४॥

५

महाकवि विद्यापति
मैथिलकोकिल

जीवन-परिचय

महाकवि विद्यापति ठाकुर मिथिला प्रदेश के निवासी थे। बहुत दिनों तक लोग इन्हें बंगाली समझते रहे, परन्तु अन्त में बहुत छानबीन करने पर उनका यह विचार भ्रमात्मक निकला। इनका निवास स्थान विसपी ग्राम था, जिसे गढ़विसपी भी कहते हैं। यह गाँव दरभंगा ज़िले में कमतौल स्टेशन से चार मील की दूरी पर है। इसमें इनके पूर्वज बहुत दिनों से रहते आये थे। इनकी वशावली इस प्रकार है :—

उन्होंने पालकी वहीं रखवा दी। कहते हैं कि गगा स्वय आकर उनके पास बहने लगी और इनको अपने अन्तस्तल में ले गई। इससे विद्यापति की दृढ़ भक्ति का परिचय मिलता है।

विद्यापति के पदों में शृगारी पद अधिक हैं। बगाली वैष्णवों में इनका प्रचार बहुत अधिक रहा है। कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु इनके पदों को गाते २ तल्लीन हो जाते थे। इसी बात से कई लोग यह समझने लगते हैं कि विद्यापति वैष्णव थे, परन्तु यह उनकी भूल है। विद्यापति शैव थे। विसपी गाँव से उत्तर भेड़वा गाँव में एक बाणेश्वर महादेव का मदिर है। कहते हैं कि विद्यापति इन्हीं महादेव की पूजा किया करते थे।

विद्यापति ठक्कुर कोई ९० वर्ष तक जीवित रहे। इनकी पत्नी का स्पष्ट उल्लेख इनके किसी पद में नहीं मिलता। इनके हरिपति नाम का एक पुत्र तथा दुलही नाम की पुत्री थी। अपनी कन्या को सबोधित करके इन्होंने कई पद कहे हैं। इनकी पुत्र-वधू का नाम चन्द्रकला था। चन्द्रकला जी के नाम की एक कविता लोचन कवि सगृहीत रागतरगिणी में विद्यमान है।

विद्यापति के परम मित्र, इनके गुरु के भतीजे श्री पक्षधर मिश्र थे। पक्षधर के विषय में एक बड़ी मनोरजक कथा प्रसिद्ध है—

विद्यापति ने विसपी ग्राम में एक अतिथि शाला खुलवा रक्खी थी। प्रत्येक अभ्यागत को भोजन करवाया जाता था। एक बार विद्यापति शाला में आकर पूछने लगे कि क्या सब को भोजन कराया गया? सब ने कहा—हाँ। परन्तु कोने में एक दुर्बलकाय ब्राह्मण देवता बैठे थे। उनको भोजन

नहीं मिला था। विद्यापति ने जब पास जाकर देखा तो उनके मित्र पक्षधर निकले। अवहेलना का समाधान करते हुए विद्यापति बोले—'प्राघुणो घुणवत्कोणे सूक्ष्मत्वान्नोपलक्षित'।

अर्थात् 'अतिथि महाशय घुन के समान छोटे थे, इसलिये कोई देख न पाया।' इस पर पक्षधर तुरन्त बोल उठे—

'न हि स्थूलधिय पुस. सूक्ष्मे दृष्टि. प्रजायते' ॥

अर्थात् 'स्थूलबुद्धि पुरुष की दृष्टि सूक्ष्म वस्तु की ओर नहीं जाती।' जिस पर यह बहुत लज्जित हुए।

विद्यापति की सस्कृत और मैथिल की निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई हैं—

कीर्तिलता, भूपरिक्रमा, पुरुषपरीक्षा, कीर्तिपताका, लिखनावली, विभागसार. वर्षक्रिया, गया पत्तल, शैव सर्वस्वसार, गगावाक्यावली, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्ति, तरगिणी तथा पदावली।

कि कहब हे सखि आजुक बात, मानिक पड़ल कुबनिक हात ।
काच काञ्चन न जानय मूल, गुञ्जा रतन करइ समतूल ।
जे किछु कभु नहिं कला रस जान, नीर खीर दुहुँ करे समान ।
तन्हि सो कहाँ पिरित रसाल, बानर कण्ठे कि मोतिय माल ।
भनइ विद्यापति इह रस जान, बानर मुँह कि शोभय पान ॥१॥

* * *

हमर नागर रहल दूर देश, केऊ, नहिं कहि सक कुशल सँदेश ।
सो सखि काहि करब अपतोस, हमर अभागि पिया नही दोस ।
पिया बिसरल सखि पुरुब पिरीति, जखन कथल बाम सब बिपरीति ।
मरम क वेदन मरमहि जान, आन क दुख आन नहि जान ।
भनइ विद्यापति न पुरइ काम, कि करति नागरि जाहि विधि बाम ।

* * *

माधव कत तारे करब बड़ाइ ।
उपमा तोहर हम ककरा कहब, कहितहुँ अधिक लजाइ ॥

जौं श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ, तौं पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीश निशाकर तौं पुन, इकहि पक्ष इजोर॥
मनि समान अओरि नहि दूसर, तिन कहुँ पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित मै रहु की कहु ठामहि टामे॥
तोहर सरिस एक तोह माधव, मन होइछ अनुमाने।
सज्जन जन सों नेह कठिन थिक कवि 'विद्यापति' भाने॥

* * *

सजनी अपद न मोहिं परवोध।
तोड़ि जोड़िअ जाहाँ गेंठे पए पड़ ताहाँ तेज तम परम विरोध॥
सलिल सनेह सहज थिक सीतल ई जानइ सबे कोइ।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइय, तइ अओ विरत रस होइ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ कुल ससि नीली रंग।
अनुभवि पुनि अनुभवए अचेतन पड़ए हुतास पतंग॥

* * *

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा विहरति छाती।
गोपी सकल विसरलनि रे जत छिल अहिवाती॥
सुतिल छलहुँ अपन गृह रे, निन्दई गेलउ सपनाइ।
करसों छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिय गराणी।
आनक धन सों धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी॥
गोकल चान चकोरल रे चोरी गेल चन्दा।

बिछुड़ि चललि दुहु जोड़ी रे जीव इह गेल धंदा ॥
काक भाख निज भाखह रे, पहु आओत मोरा।
क्षीर खॉड़ भोजन देव रे भरि कनक कटोरा ॥
भनहिं 'विद्यापति' गाओल रे धैरज धर नारी।
गोकल होयत सुहाओन फेरि मिलत मुरारी ॥

* * *

सखि कि पुछसि अनुभव मोय।
से ही परित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतन होइ ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल स्रुति पथे परस न गेल ॥
कत मधु जामिनअ रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल।
लाख लाख जुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुड़न न गेल ॥
कत विदग्ध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख।
'विद्यापति' कह प्राण जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक ॥

* * *

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरली बजाव।
समय सँकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव ॥
सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि।
जमुना का तिर उपवन उद्वेगल फिरि फिरि ततहि निहार।
गोस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि ॥

तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ 'विद्यापति सुन वर जौवति वन्दह नन्दकिशोरा॥

कीर्तिलता

पाइग्गह पअ भरें भउँ पल्लानि अउँ तुरंग।
थप्प थप्प थन वार कइ, सुनि रोमञ्चिय अंग॥

णाराच छंद

अनेअ वाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिआ।
परक्कमेहि जासुनाम दीप दीपे जानिआ॥
विसाल कंध चारु वंध सत्तिरूअ सोहणा।
तलप्प हाथि लाँघि जाथि सत्तु खेण खोहणा॥
समथ्थ सूर ऊरपूर चारि पाअे चक्करे।
अनन्त जुज्झ मम्म वुज्झि सामि काज संगरे॥
सुजाति शुद्ध कोहे कुद्ध तोरि धाव कन्धरा।
विशुद्ध दापे मारदापे चूरि जा वसुन्धरा॥
विपख्ख केन मेन हेरि हिंसि हिंसि दाम से।
निसान सद्द भेरि संग खोणि खुन्द तास से॥
तजान भीत वात जीत चामरेहि मण्डिआ।
विचित्त चित्त नाच नित्त राग वाग पण्डिआ॥

* * *

एवञ्च

विछि वाछि तेजिताजि पख्खरेहि साजि साजि ।
लख्ख संख आनु घोर जासु मूलें मेरु थोर ॥

* * *

तेजमन्त तरवाल तरुण तामस भरे वाढल ।
सिन्धु पार सम्भूत तरणि रथ रहइ तें काढल ॥
गवण पवन पछुआव वेगें मानसहु जीति जा ।
धाय धूप धसमसइ वज्ज जिमि गज्ज भूमि पा ॥
सङ्गाम भूमितल सञ्चरइ नाचै नचावइ विविह परि ।
अरिराअन्ह लच्छि अछोलि ले, पूर आस असवार कइ ॥

* * *

वेवि सहोअर राअ गिरि लहिअउँ वेवि तुरंग ।
पास पसंसए सव्व जा दूर सत्तु ले भंग ॥
तेजी ताजी तुरअ चारि दिश चप्परि छुट्टइ ।
तरुण तुरक असवार वाँस जञे चावुक फुट्टइ ॥
मोजाञे मोञे जोलि तीर भरि तरकस चापे ।
सीगिन देइ कसीस गव्व कए गरुञे दापे ॥
निस्सरिअ फौद अणवरत, कत तत परिगणना पारके ।
पअ भारें कोलअहि भोलकर, कुरुम उँलटि करवट्ट दे ॥

अरिल्ल

कोटि धनुद्धर धावथि पायक,
लष्ख संख चलिअउँ ढलवाइक।
चलु फरिआ इक अंगे चंगे,
चमक हाइ खग्गग्ग तरंगे॥

मत्त मगोल बोल णहि बुज्झइ,
पुन्दकार कारण रण युज्झयी।
कॉच मासु कवहु कर भोअण,
कादम्बरि रसे लोहित लोअन॥

जोअन बीस दिनछे धावथि,
बगल क रोटी दिवस गमावथि।
वलके काटि कमानहि जोले,
धाजे चलथि गिरि उप्पर घोरें॥

गो वम्भन वधँ दोस न मानथि,
पर पुर नारि वन्द कए आनथि।
हस हरषे रुण्ड हासह जहिं,
तरुणे तुरुक वाचा सए सह सहि॥

अरु कत धाँगड देखि अथि जाइतें,
गोरु मारि मिसमिल कए षाइतें।
अरु धाँगड कटकहि लटक वड जे दिस धाइँ जाथि,
तं दिस केरी राए घर तरुणी हट्ट विकाथि॥

माणवहला छंद

सांवर एक हाँक तन्हि का हाथ।
चथइओ कोथइओ वेढल माथ॥

दूर दुग्गम आगि जारथि,
नारि विभारि वालक मारथि।
लूडि अरजन पेटे वए,
अन्याओ वृद्धि कन्दल खए॥
न दीना क दया न सकता क डर,
न वासि सम्वर न विआही घर।
न पापक गरहा न पुन्यक काज,
न शत्रु क शंका न मित्र क लाज॥
न थीर वचन न थोड़े ग्रास,
न जस लोभ न अपजस त्रास।
न शुद्ध हृदय न साधुक संग,
न पिउँ वाँउँ पसओ न युद्ध भंग॥

ऐसो कटकहिं लटक वड, जाइतैं देषिअ वहुत।
भोअण भष्खण छाड नहि गमणे न हो परिभूत॥
ता पाछे आवत्त हुअ हिन्दू दल गमनेन।
राजा गणए न पारिअइ राउत लेष्खइ केण॥

६

महाकवि देव

जीवन-परिचय

देवदत्त, उपनाम 'देव' का जन्म सं० १७३० वि० (सन् १६७४) में हुआ। इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ 'भावविलास' में निम्नलिखित परिचय दिया है—

सुभ सत्रह सै छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव मुख देवता, भाव विलास सहर्ष॥

देव जी का सम्मान दिल्लीपति के शाहजादा आज़मशाह ने किया। तथा भवानीदत्त वैश्य, फफूँद के कुशलसिंह, राजा उद्योत-सिंह आदि के नामों पर भी इनके ग्रन्थ हैं। तदनतर राजा भोगी-लाल को पाकर आपने अपने पहले आश्रयदाताओं को सर्वथा भुला ही दिया। परन्तु वहाँ भी ये बहुत देर तक न ठहरे। इसके पीछे इनका कुछ पता नहीं कि कहाँ रहे या कहाँ नही। या तो अपने लिये आश्रयदाता ढूँढने को अथवा और किसी कारण से इन्होंने देश-विदेशों में खूब भ्रमण किया। कुछ भी हो, इनके

ग्रन्थ बहुत ही उत्कृष्ट हैं। इन्होने अपनी रचनाओं में घनाक्षरियों की सख्या सवैयों से अधिक रक्खी है। और उत्कृष्टता में भी उनकी घनाक्षरियाँ सवैयों से कम नही। इनकी रचनाओं को कहीं मे भी पढ़ लीजिए, आपको कहीं भी कोई त्रुटि दृष्टिगोचर न होगी।

इनकी कविता में चोरी बहुत कम है। अधिक अश्लीलता भी नहीं पाई जाती।

ये बड़े रसिक व्यक्ति थे। देशाटन में जहाँ-जहाँ भी ये जाते रहे, वहाँ की स्त्रियों को आपने बहुत ध्यानपूर्वक देखा। इन्होंने प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश की स्त्रियों का बड़ा ही सुन्दर व सचा वर्णन किया है।

इनकी भाषा ठेठ व्रज है। विद्वानों का मत है कि भाषा की उत्कृष्टता में देव तथा मतिराम सर्वोच्च हैं। इस विषय में कोई कवि इनकी समता को नही पहुँच सका। कोमलता और सरलता, इन दो बातों ने इनकी भाषा को उत्कृष्ट बनाया हुआ है। इनकी कविता में श्रुतिकटु शब्द ढूँढने से भी बहुत कम मिलते हैं। यदि कोई अत्युक्ति न समझी जाय तो यह भी सत्य से दूर नहीं कि देव की भाषा मतिराम की भाषा से भी कहीं उन्नतावस्था को पहुँची हुई है। इनकी भाषा में निम्नलिखित गुण मतिराम की कविता से अधिक हैं—

(क) इनकी भाषा में अनुप्रास भरे पड़े हैं। आप जो शब्द

उठाते थे, प्राय: उसी प्रकार के कई शब्द उसके पीछे रखते चले जाते थे। और जब वह श्रेणी छोड़ते थे, तब उसी के शब्दों का कोई और अक्षरक्रम उठाकर उसकी समता के शब्द रखने लगते थे। इस प्रकार एक साथ आप कई प्रकार के अनुप्रास रख जाते थे।

(ख) इनके प्राकृतिक वर्णन पढकर ऐसा विदित होता है कि इन्हें प्रकृतिनिरीक्षण का भी बड़ा शौक था। मानव प्रकृति का वर्णन करने में तो आप पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए थे। नायिकाओं का वर्णन ऐसा सुन्दर किया है, मानों चित्र खीचकर ही सामने धर दिया हो। नायिकाओं के विषय में ऐसा सुन्दर वर्णन कदाचित् ही किसी कवि ने किया होगा। इनकी कविता से विदित होता है कि कवि और चित्रकार में कितना घनिष्ठ संबध है।

कई विद्वानों का विचार है कि इनकी रचनाओं में शब्दाडम्बर बहुत है, परन्तु हमारे विचार में वे भूल करते हैं। उनकी भाषा अद्वितीय अवश्य है, पर साहित्य-गौरव की तुलना में हम भाषा का पद ऊँचा नहीं समझते। देव का अपना भी यही मत है।

प्रेम का वर्णन आपका अनुपम है। प्रेम में आपने पति-पत्नी की प्रीति को ही मुख्य स्थान दिया है। आपने नायक और नायिका का पृथक् २ वर्णन नहीं किया, प्रत्युत मिला हुआ ही वर्णन किया है। हमारे विचार में देव के अन्य गुण इतने प्रबल हैं कि इनके भाषासंबधी गौरव को छोड़ देने से भी इनका स्थान वहीं का वहीं रहता है। यदि आपको आचार्य कहा जाय तो यह उपयुक्त ही है, अनुपयुक्त नहीं।

इनकी निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं :—

भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, कुशलविलास, शब्दरसायन, सुखसागरतरग, नीतिशतक, वैराग्यशतक, सुजानचरित्र, रागरत्नाकर, देवशतक, सुदरीसिंदूर, शिवाष्टक, सुजानविनोद, प्रेमतरग, देवचरित्र, जातिविलास, देव-माया-प्रपच नाटक, वृत्तविलास, नखशिख, प्रेमदर्शन, रसानदलहरी, प्रेमदीपिका, सुमिलविनोद, राधिकाविलास और दुर्गाष्टक ।

जगद्दर्शन पच्चीसी से

खाल ही की खोल मे अखिल ख्याल खेलि खेलि,
गाफ़िल ह्वै भूल्यो दुख दोख की खुशाली तैं।
लाख लाख भाँति अभिलाख लखे खोटे खल,
अलख लख्यो न लखी लालन की लाली तैं॥
पुलकि पुलकि 'देव' प्रभु सो न पाली प्रीति,
दै दै करताली न रिझायो बनमाली तैं।
झूठी झलमल की झलक ही में झूल्यो जल,
पल की पखाल खल खाली खाल पाली तैं॥१॥

* * *

ऐसो जो हौं जानतो कि जै है तू विषै के संग,
ए रे मन मेरे, हाथ पाँव तेरे तोरतो।
आज लौं हौं कत नरनाहन की नाही सुनि,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो॥

चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुख मोरतो।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे मो बाँधि,
राधा वर विरुद् के वारिधि मे बोरतो ॥२॥

* * *

सवैया

हाय दई इहि काल के ख्याल मे,
फूल से फूलिय सब कुम्हिलाने।
या जग बीच वचे नहिं मीच पै,
जे उपजे ते मही में मिलाने ॥
'देव' अदेव बली बलहीन,
चले गये मोह की हौंस हिलाने।
रूप कुरूप गुनी निगुनी, जे,
जहाँ उपजे ते तहां ही बिलाने ॥३॥

* * *

बागो बनो जरपोस को ता महिं ओस को हार तन्यो मकरी ने।
पानी में पाहन पोत चल्यो, चढ़ि कागद की छतुरी सर दीने ॥
काँख में बाँधि कै पाँख पतंग के 'देव' सुसंग पतंग को लीने।
मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने ॥४॥

* * *

संपति मे ऐठि वैठि चौतरा अदालति के,
विपति में पैन्हि बैठे पायँ झुनझुनियाँ।
जेतो सुख संपति इतोई दुख विपति मे,
संपनि में मिरजा विपति परे धुनियाँ॥
संपति ते विपति, विपति हू ते संपति है,
संपति औ विपति बराबर कै गुनियाँ।
संपति मे काँय काँय विपति मे भाँय भाँय,
काँय काँय भाँय भाँय देखी सब दुनिया॥५॥

* * *

मकरी के तागे वनि वागे पहिरत, चढ़े
पौन के डँडेरे नभ डोलत न डरपै।
वारि के वलूलनि के बनिज बजार बैठे,
सपने की संपै गनि सौंपै बड़े थर पै॥
प्रेतानि सौ प्रीति प्रेम चरचा चुरैलनि सो,
मोम के महल रचै सिखी के सिखर पै।
बूँद गहि बादर पै चढ़्यो नहिं जाय मूढ़,
फेर चढ़ो चाहत धुआँ के धौर हर पै॥६॥

* * *

भ्रम को सो भूत अरु भूत की सी सेना अरु,
　　सेना को सो सोर सनसार अनुमान है।
भयो भयो गयो गयो पेखन के जैसो ख्याल,
　　फेर नहि खोज रोज आपन पयान है॥
रोवत हँसत भूल्यो गावत नचत देखि,
　　माया मेरे 'देव' की कि मेरो ई अयान है।
जी मे यह जान जग जानत मसान मूँदि,
　　देखि नैन कान तहाँ कैसो सुन्नसान है॥७॥

*　　*　　*

गुरुजन जाँवन मिल्यो न भयो दृढ़ दधि,
　　मथ्यो न विवेक रई 'देव' जो बनायगो।
माखन मुकुति कहाँ छाड़्यो न भुगुति जहाँ,
　　नेह बिनु सिगरो सवाद खेद नायगो॥
बिलखत वच्यो मूल कच्यो रुच्यो लोभ भाँडे,
　　तच्यो क्रोध आँच पच्यो मदन छिनायगो।
पायो न सिरावन सलिल छिमाछीटन सों,
　　दूध सो जनम बिन जाने उफनायगो॥८॥

*　　*　　*

अकबर वीर पर वीर कविवर केसो,
गंग की सुकविताई गाई रस पाथी नै।
बरनि बरनि नारी नरनि धरनिपति,
मोहि लीने ताना रीरी ता धनं तताथी नै॥
बिन भगवंत के भजन अंत विपति है,
देव गति पाई कहूँ संपति के साथी नै।
एक दल सहित बिलाने एक पल ही मे,
एक भये भूत एक मीजि मारे हाथी नै॥९॥

* * *

कहूँ जोगी भेस कै जगावत अलेख कहूँ,
संन्यासी कहाय मठ संन्यासी ठयो फिरै।
बैरागी के रूप कहूँ जंगम अनूप रस,
स्वाँग हू बनाय संग रंग उनयो फिरै॥
छुधा छोभ छीन कहूँ पंडित प्रवीन कहूँ,
हरि रंग दीन तीन तापन तयो फिरै।
लोभ की लपेट काम क्रोध की दपेट बीच,
पेट की चपेट लागे चेटकी भयो फिरै॥१०॥

* * *

राजत राज समाज में वाजन, साजत है सुख साज घनेरो।
आप गुनी गल बाँधे गुनी के, सुबोल सुनाय कियो जग चेरो॥
खाल को ख्याल मढ्यो वजे ढोल ज्यों, 'देव' तू चेतत क्यों न सबेरो।
आखिर राग न रंग न बेसुर फूट गयो फिरि काठ को घेरो॥११॥

*　　　*　　　*

भीतर भारे भँडारन जे भरि,
　　भींजे सुगंध की वोयन ही मै।
बाहिर हू रथ हाथी तुरंग,
　　घने सुख लीजत लोय नही मै॥
आठहु याम विजै धुनि बाजि,
　　सुदेखउ 'देव' अहो ऽयन ही मै।
घास जटा सिर जोगी लौ ते घर,
　　ठाढ़े घमात धमोयन ही मै॥१२॥

*　　　*　　　*

जाने कहावत है जग में जान जानै नहीं जप झांसि जिरी को।
आपुन काल के जाल पर्यो, अरु चाहत और की राजसिरी को॥
'देव' सुदौरत दूरि ते नीच, नगीच न देखत कीच रिरी को।
हौं तकौं स्वानकों, स्वान बिली कों, विली तकै चूहाको, चूहा रिरी को

काहू न संग गनिका जिय, कोको न कोपि गयो कुपरी को।
'देव' तू काको भयो बिगरै सठ झूठो झुरै झिगरै झुपरी को॥
राख में राखि सकैगो जु राखत, या तन चंदन की चुपरी को।
स्वान मसान में खैंचिहै खोखरि, जंबुक खोहन मे खुपरी को॥

* * *

एक परि सोवत अनेक होत सपने मे,
एक न अनेक सुखपति में परम है।
पर मन सुखपति तुरिया में लीन भयो,
काहे को बहुरि 'देव' कौतुक करम है॥
देखि देखि भीत ज्यो अँधेरे भीति जाने भूत,
जेवरी को जानै साँप पायो न मरम है।
हौं ही तौलों लोक जब हौं न तब कौन जाने,
काहे को जगत कछु मेरो ही भरम है॥१५॥

* * *

पाँख ते पखेरू कै पखेरू हू ते करै पसू,
पसुन पखेरू फिर पेख्यो पाँख हू न है।
सूत वारि साबित कै गिलि उगलत मोती,
मोति गिलि वही सूत काढ़ि देत दून है॥

वार्जीगर को सो ख्याल मोहीं में जगत फिर,
सून औ न मोती कछु हाथ मुख हू न है।
एक ते अनेक कै पदारथ लौं पूरे करि,
लेखो करि देखो एक साँचो और सून है ॥१६॥

* * *

मिश्रित पद्य

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहो रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसो नर लोक परलोक वर लोकनि मैं,
लीन्हीं मै अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौं ॥
तन जाउ, मन जाउ, 'देव' गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावन वारी वनवारी की मुकुटवारी,
पीत पट वारी वहि मूरति पै वारी हौं ॥१॥

* * *

जबै ते कुँवर कान्ह रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।
तब ही ते 'देव' देखी देवता सी हँसती सी,
रीझती सी खीझती सी रूठती रिसानी सी ॥

छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी छिन सी,
जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी।
बीधी सी बँधी सी विष बूड़ती विमोहित सी,
बैठी बाल वकति विलोकति विकानी सी ॥२॥

* * *

सवैया

जाके न काम न क्रोध विरोध न, लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहौ।
मोह न जाहि रहे जग बाहिर मोल जवाहिर ता अति चाहौ॥
बानी पुनीत त्यों 'देव' धुनी, रस आरद सारद के गुन गाहौ।
सीस ससी सविता छविता, कविता हि रचै कविताहि सराहौ॥

* * *

बारे बड़े उमड़े सब जैबे को, तौन्ह तुम्हैं पठवे बलिहारी।
मेरे तो जीवन 'देव' यही धुन, या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी॥
जानै न रीत अथाइन की, नित गाइनि मैं बन भूमि निहारी।
याहि कोउ पहिचाने कहा, कछु जानै कहा मेरो कुंजविहारी॥

* * *

प्रेम पयोधि परो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहि रे मन।
कोप तरंगनि सो बहि रे पछिताय पुकारत क्यों बहिरे मन॥

'देव' जू लाज जहाज ते कूदि रह्यो मुख मूँदि, अजौं रहि रे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन॥

*　　*　　*

एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति लेखियत,
देखियत दूसरो न 'देव' चराचर मैं।
जासो मनु राचै तासो तनु मनु राचै, रुचि
भरि के उघरि जाँचै साँचै करि कर मैं॥
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे को सती लौं बैठि सर मैं।
प्रेम सो कहत कोई ठाकुर न ऐंठो, सुनि
बैठो गाड़ि गहिरे तौ पैठो प्रेम घर मैं॥

*　　*　　*

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,
तामैं तीनौ लोक बूड़ि गये एक संग मैं।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागद,
सु न्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं॥
आँखिन में तिमिर अमावस की रैन जिमि,
जंबु-रस-बुंद जमुना जल तरंग मैं।

यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग मैं ॥

*　*　*

पावस

सहर-सहर सोंधों सीतल समीर डोलै,
घहर घहर घन घेरि कै घहरिया ।
झहर-झहर झुकि झीनी झरि लायो 'देव',
छहर-छहर छोटी बूँदन छहरिया ॥
हहर-हहर हँसि-हँसि कै हिंडोरे चढ़ी,
थहर-थहर तन कोमल थहरिया ।
फहर-फहर होत पीतम को पीत पट,
लहर-लहर होति प्यारी की लहरिया ॥

*　*　*

'देव' नभ-मंदिर मे बैठारयो पुहुमि पीठ,
सिगरे सलिल अन्हवाये उमहत हौं ।
सकल महीतल के मूल फल फूल दल,
सहित सुगंधन चढ़ावन चहत हौं ॥

अगिनि अनन्त धूप दीपक अखण्ड ज्योति,
जल थल अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं।
ढारत समीर चौर कामना न मेरे और,
आठो जाम राम तुम्हें पूजत रहत हौं॥

* * *

वारें कोटि इन्दु अरविन्दु रस विन्दु पर,
मानै ना मलिन्द विन्दु समकै सुधासरो।
मलै मल्लि मालती कदंब कचनार चंपा,
चंपे हून चाहे चित चरन टिकासरो॥
पदुमिनी तू ही षटपद को परम पदु,
'देव' अनुकूल्यो और फूल्यो तो कहा सरो।
रस रिसि रास रोस आसरो सरन विसे,
बीसो बिसवास रोकि राख्यो निसि बासरो॥

* * *

रीझि रीझि रहसि रहसि हँसि हँसि उठै,
साँसे भरि आँसू भरि कहत दई दई।
चौंकि चौंकि चकि चकि उचकि उचकि 'देव',
जकि जकि बकि बकि परत वई वई॥

दुहुन को रूप गुन दोऊ बरनत फिरैं,
पल न थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भये राधिका मे,
राधा मन मोहि मोहि मोहन मई मई॥

७

महाकवि पद्माकर

जीवन-परिचय

ऐसा कौन हिंदी-कविता-प्रेमी होगा, जिसने सुप्रसिद्ध 'गंगा लहरी' के रचयिता कविवर पद्माकर का नाम न सुना हो । आपका जन्म स० १८१० में जिला बाँदा में हुआ था और मृत्यु कानपुर में गगा जी के तट पर स० १८६० में । इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था । वे भी बड़े प्रतिभाशाली कवि थे । ये तैलग ब्राह्मण थे । रीतिकाल के कवियों में इनका स्थान सब से ऊँचा है । बिहारी को छोडकर कोई भी कवि रसिकता में इनकी तुलना नहीं कर सकता । ये व्रजभाषा के अतिम सहृदय कवि थे, इनके पश्चात् व्रजकविता पतन की ओर जाने लगी ।

इन्होंने अपनी प्रतिभा के कारण कई राज-दरबारों में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी । आप कुछ दिन बाँदा के हिम्मतबहादुरसिह के यहाँ रहे और उन्हीं के नाम पर 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' लिखी । सितारा-नरेश राघोवा के यहाँ से आपको एक हाथी, एक लाख रुपया

और १० ग्राम मिले। इसके पश्चात् ये जयपुर-नरेश सवाई जगतसिंह की सभा में पहुँचे। जगतसिंह ने इन्हें देखकर कहा कि 'आजकल' के कवि ऐसे होते हैं कि 'उठाउ आस पास तें'। पद्माकर जी ने इसी समस्या पर यह कवित्त बनाकर तत्काल सुनाया —

सौतिन के त्रास तें रहे धौं और वासत न
आये कौन गाँस से प्यो करु सो तलास तें।
कहैं 'पद्माकर' सुवास तें जवास तें सु
फलन की राशि तें जगी है महामासतें॥
चाँदनी विकास तें सुधाकर प्रकाश तें न
राखत हुलास तें न लाउ खसखास तें।
पौन करु आस तें न जाउँ उडि वास तें
अरी गुलाब पास तें उठाउ आस पास तें॥

उनकी इस दैवी स्फूर्ति को देख महाराज परम प्रसन्न हुए और सारी सभा में उनकी वाहवाही होने लगी। महाराज ने इस कवित्त को सोलह बार पढ़वाया और सोलह हाथी, गाव, पोशाक तथा २५०००) नकद इनाम में दिये। उसी समय महाराज ने उन्हें एक 'नायिका भेद' का ग्रथ बनाने की अनुमति दी। महाराज की आज्ञा-नुसार उन्हीं के नाम पर पद्माकर जी ने अपना प्रसिद्ध 'जगत्विनोद' नामक ग्रथ बनाया। उक्त कवित्त इसी में प्रौढ़ा उत्कण्ठिता के उदाहरण में दिया गया है। कहते हैं कि इस ग्रन्थरत्न की बनवाई के इन्हें एक लाख रुपये मिले थे। संभवत 'पद्माभरण' नाम का अलकार ग्रन्थ भी वहीं पर रचा गया था।

फिर इनकी ख्याति सुनकर ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिंधिया की उनसे मिलने की प्रबल इच्छा हुई। उस समय पद्माकर कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो गये थे और जयपुर से आगरे आ गये थे। महाराज ने सवारी भेजकर इन्हें बुलाया। अन्धे कोढी आदि रोगियों को देखना राजा के लिये शास्त्र में निषिद्ध है। मन्त्रियो ने निवेदन किया कि महाराज ! परपरा से ऐसी रीति चली आई है कि ऐसे रोगी राजा के समीप नही आने पाते। इसलिये पद्माकर जी को दरबार में न आने देना चाहिये। महाराज ने कहा—अच्छा, मैं पद्माकर को न देखूँगा, इसलिये बीच में परदा डाल दिया जाय। वे भीतर से अपनी कविता पढ़ें। मैं उनके मुख से उनकी कविता सुना चाहता हूँ। वैसी ही व्यवस्था की गई। एक कोठी में पद्माकर बैठाये गये, दरवाजे में परदा डाल दिया गया और बाहर दालान में महाराज और उनके सभासद बैठे। आज्ञा होते ही पद्माकर ने अपने कविता-समुद्र को तरंगित किया। जैसे ओज-भरे इनके कवित्त होते थे, वैसा ही बलपूर्ण इनका पढ़ना भी था। इन्होंने महाराज की प्रशसा में ऐसे भड़कीले छन्द पढ़े कि महाराज मुग्ध हो गये। उनसे से न रहा गया और झट परदा हटा भीतर जाकर पद्माकर को गले लगा लिया। कुछ दिन पद्माकर बड़े सम्मान के साथ ग्वालियर में रहे। उन्होंने महाराज की आज्ञा से 'आलीजा प्रकाश' नामक नायिका भेद का ग्रन्थ भी बनाया। इस ग्रन्थ में महाराज की प्रशसा के तथा अन्य विषयों के कुछ स्फुट छन्दों को छोड़कर प्राय सभी छन्द 'जगत्विनोद' के रक्खे गये हैं। तत्पश्चात् जब उन्हें नाना प्रकार

की औषध और यत्न करने पर भी कुष्ठ को आराम न हुआ तो उन्होंने अपना शेष जीवन गगातट पर रहकर व्यतीत करना विचारा। जब वह कानपुर के समीप गगा की शरण में जा रहे थे तो मार्ग में अपने पापों को सबोधन करके यह कवित्त पढ़ने जाते थे :—

जैसे तू पहले मोकों नेक न डरात हुतो,
तैसे अब हौंहूँ तोसौं नेकहूँ न डरिहौं।
कहै पदमाकर प्रचड जो परैगो तो
उमड कर तोसौं भुजदण्ड ठोक लरिहौं॥
चल्योचल चल्योचल विचलन बीच ही तें
कीच बीच नीच तो कुटुब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि
गगा की कछार में पछार छार करिहौं॥

कहते हैं, उसी समय से उनका रोग घटने लगा और कुछ दिन गगा सेवन करने के उपरात सर्वथा जाता रहा और वे नीरोग हो गये। इन्होंने गगा की स्तुति में 'गगालहरी' नामक कवित्तो का सुदर ग्रंथ बनाया है। तदुपरात उन्होंने कानपुर में गगातट पर अपना मकान बनवा लिया और वहीं रहने लगे। कहते हैं कि वे वहाँ ७ वर्ष तक जीवित रहे और ८० वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ। भूषण और केशव के पश्चात् इन्हीं का स्थान है, जिन्होंने कविता बनाकर इतना धन कमाया। मरने के समय ये ८० लाख रुपया नकद छोड़ गये थे।

आत्म-परिचय

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखण्डवासी कवि
सुजस-प्रकासी पदमाकर सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छन्द छप्पय अनेक भाँति,
संस्कृत प्राकृत पढ़ै गुन-ग्रामा हौं॥
हय रथ पालकी गयंद गृह ग्राम चारु,
आखर लगाये लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिंह,
तेरो जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं॥

*　　*　　*

जगतसिंह-वर्णन

छत्रिन के छत्र छत्रधारिन के छत्रपति,
छाजत छटानि छिति छेम के छवैय्या हौ।
कहै 'पद्माकर' प्रभाव के प्रभाकर,
दया के दरियाव हिन्द हद्द के रखैया हौ॥
जागने जगतसिंह साहेब सवाई,
श्रीप्रताप-नृप-नंद-कुलचन्द रघुरैया हौ।
आछे रहो राजराज राजन के महाराज,
कच्छ-कुल-कलस हमारे तौ कन्हैया हौ॥

*　　*　　*

आप जगदीस्वर ह्वै जग में विराजमान,
हौ हूँ तौ कवीस्वर ह्वै राजतै रहत हौं।
कहै 'पद्माकर' ज्यों जोरत सुजस आप,
हौं हूँ त्यों तिहारो जस जोरि उमहत हौं॥
श्री जगतसिंह महाराज मान सिंहावत,
बात यह साँची कछु काँची ना कहत हौं।
आप ज्यों चहत मेरी कविता दराज, त्यो मैं
उमरि दराज राज ! रावरी चहत हौं॥

*　　*　　*

हिम्मतबहादुर-विरुदावली से

तुपकै तड़कै धड़कै महा हैं,
प्रले-चिल्लिका-सी झड़कै जहाँ है ।
खड़कै खरी वैरि-छाती भड़कै,
सड़कै गये सिंधु मज्झै गड़कै ॥

* * *

चलै गोल-गोली अतोली सनंकैं,
मनों भौर-भीरैं उड़ाती भनंकै ।
चढ़ी आसमानै छई बेप्रमानै,
मनो मेघमाला गिलै भासमानै ॥

* * *

गिरै ते मही में जही भर्भरा कै,
मनो स्याम ओरे परै झर्झरा कै ।
चलै रामचंगी धरा में धमंकै,
सुने तैं अवाजै बली वैरि संकै ॥

* * *

तमंचे तहाँ वीर-संचे छुड़ावैं,
कसे वंक बानै निसानै उड़ावैं ।

छुटी एक कालैं बिसालैं जँजालैं,
　　जगी जामगी त्यों चलैं ऊँट नालैं ॥

*　　*　　*

गजैं गाज सी छूटती त्यों गनालैं,
　　सुनैं लज्जतीं गज्जतीं मेघमालैं ।
चली मूँगरी उच्च ह्वै आसमानैं,
　　मनो फेरि स्वर्गैं चढ़ै दिग्ध-दानैं ॥

*　　*　　*

परी एक वारै धमाधम धरा है,
　　मनो ये गिरी इन्द्र हू की गदा है ।
किधौं ये विमानन्न की चक्र झुण्डैं,
　　परी टूटि ह्वै कै बिराजैं भसुण्डैं ॥

*　　*　　*

छुटी है अचाका महाबान वाली,
　　उड़ी है मनो कोपि कै पन्नगाली ।
खरी कुहकुहाती जुड़ाती नहीं हैं,
　　चली हैं अनन्तै दिगंतैं दही है ॥

*　　*　　*

चली चद्दरैं त्यों मचे हैं धड़ाके,
छड़ाके फड़ाके सड़ाके खड़ाके ।
छुटे सेरबच्चे भजे वीर कच्चे,
तजै बाल-बच्चे फिरैं खात दच्चे ॥

* * *

छुटे सब्ब सिप्पे करैं दिग्घ टिप्पे,
सबै सत्रु छिप्पे कहूँ है न दिप्पे ।
कराबीन छुट्टैं करैं बीर चुट्टैं,
करी कंध टुट्टैं इतै-उत्त बुट्टै ॥

* * *

चली तोप धाँ-धाँ-धधाँ-धाँइ जग्गी,
धड़ाधड़ धड़ाधड़ धड़ा होन लग्गी ।
झड़ाझड़ झड़ा बीर बाँके छुड़ावैं,
भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यों मचावै ॥

* * *

दगो यों अरावो सबै एक बारैं,
किधौं इन्द्र कोप्यौ महावज्र डारै ।
किधौं सिंधु सातौ सबै भर्भराने,
प्रलैकाल के मेघ कै घर्घराने ॥

* * *

कूरम पै कोल कोलहू पै सेष-कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की ।
कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की ॥
रजत-पहार पर संभु सुरनायक है,
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की ।
संभु जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की ॥

* * *

करम को मूल तन तन-मूल जीव जग,
जीवन को मूल अति आनँद ही धरिबो ।
कहै 'पदमाकर' त्यों आनँद को मूल राज,
राज-मूल केवल प्रजा को भौन भरिबो ॥
प्रजा-मूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ,
मेघन को मूल एक जज्ञ अनुसरिबो ।
जज्ञन को मूल धन, धन मूल धर्म, अरु
धर्ममूल गंगाजल-बिंदु पान करिबो ॥

* * *

सहज सुभाय आय एक महापातकी की,
गंगा मय्या धोई तू तौ देह निज आप है।
कहै 'पद्माकर' सु-महिमा मही में भई,
महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है ॥
जकि-से रहे हैं जम, थकि-से रहे हैं दूत,
दूनी सब पापन के उठी तन ताप है।
बाँची वही वा की गति देखि कै विचित्र रहे,
चित्र को सो लिखो चित्रगुप्त चुपचाप है ॥

* * *

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज, यह,
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै।
कहै 'पद्माकर' नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दै।
देखु यह देवनदी कीने सब देव, या तें,
दूतन बुलाइ कै बिदा कै बेगि पान दै।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खति जान दै वही को वहि जान दै ॥

* * *

जान्यो जिन है न जज्ञ जोग जप जागरन,
जन्महि वितायो जग जोयन को जोइ कै।
कहै 'पद्माकर' सुदेवन की सेवन तें,
दूरि रहे पूरि मति बेदरद होइ कै॥
कुटिल कुराही कूर कलही कलंकि, कलि-
कान की कथान मे रहे जे मति खोइ कै।
तेऊ विस्नु-अंगन में बैठे सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै॥

* * *

जैसे तैं न मोसों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब तोसों हौं हूँ नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पद्माकर' प्रचंड जो परैगो तौ,
उमंडि करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥

* * *

आयो जौन तेरी धौरी धारा में धसत जात,
जिनको न होत सुरपुर तें निपात है।
कहै 'पदमाकर' तिहारो नाम जाके मुख,
ताके मुख अमृत को पुंज सरसात है॥
तेरो तोय छ्वै कै औ छुवति तन जाको वात,
तिनकी चलै न जमलोकन में बात है।
जहां-जहां मैया तेरी धूरि उड़ि जाति गंगा,
तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है॥

* * *

जमपुर द्वारे लगे तिन में किवारे, कोऊ
है न रखवारे ऐसे बन के उजारे हैं।
कहै 'पद्माकर' तिहारे प्रन धारे तेउ,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं॥
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित-कतारे भवसिंधु तें उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे, और
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं॥

* * *

सुचित गोविंद ह्वै कै सेवते कहाँ धौं जाइ,
जल जंतु-पंति जरि जैबे को अमिलती।
कहै 'पद्माकर' सु जादा कहौ कौन अब,
जाती मरजादा ह्वै मही की अनमिलती।
जल थल अंतरिच्छ पावते क्यो पापी मुक्ति,
मुनिजन जापकन जो न दुरि मिलती।
सूखि जातो सिंधु बड़वानल की झारन सों,
जो न गंग-धार ह्वै हजार धार मिलती॥

* * *

प्रतापसिंह-वर्णन

कामद कला-निधान कोविद कविंदन को,
काटत कलेस किल कल्पतरु कैसे हैं।
कहै 'पद्माकर' भगीरथ से भागवान,
भानुकुल-भूषन भये यों राम जैसे है॥
मानिनी-मनोहरन महत मजेजवंत,
माधव-नरिंद-तनै तेजवंत तैसे है।
कूरम कुलीन मान सिंहावत महाराज,
साहिब सवाई श्री प्रतापसिंह ऐसे हैं॥

* * *

देत बढ़ा सीस तुम, देत हैं असीस हम,
तुम जसु लेत, हम बसु लेत भाये हैं।
कहै 'पद्माकर' तुम सुबरन बरषत,
हम हूँ सुहाये सुबरन बरषाये है॥
राजन के राजा महाराजा श्री प्रतापसिंह,
तुम सकबंध हम छंद बंध छाये हैं।
जानियो न ऐसी कि ये बिगिर बुलाये आये,
गुन तो तिहारे मोहिं बरबस लाये हैं॥

*   *   *

सूरत के साह कहै, कोऊ नरनाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के।
देखि असबाब मेरो भरमै नरिंद सबै,
तिन सों कहे मैं बैन सत्य सिरताज के।
नाम 'पद्माकर' डराउ मति कोउ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के॥

*   *   *

झूमत मतंग माते तरल तुरंग ताते,
राते-राते जरद जरूर माँगि लाइबो।
कहै 'पद्माकर' सो हीरा लाल मोतिन के,
पन्नग के भाँति-भाँति गहने जड़ाइबो॥
भूपति प्रतापसिंह रावरे विलोकि कवि,
देवता विचारै भूमिलोकै कव जाइबो।
इन्द्रपद छोड़ि इन्द्र चाहत कविन्द्र-पद,
चाहै इन्द्रानी कविरानी कहिवाइबो॥

* * *

कीरति-कतार करतार कामधेनुन की,
सूरति-विचार घनसार को घरसिबो।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
बोलिबो तिहारो सुधा-सिंधु को बरसिबो॥
सहज सुभाइ मुसकाइबो मनोहर है,
जगत-प्रसिद्ध आठो सिद्धि को सरसिबो।
दिल सों दया सों देखिबोई देव-दरसन,
रीझिबो रसायन है पारस परसिबो॥

* * *

पुच्छन के स्वच्छ जे तरच्छन को तुच्छ करैं,
कैयो लच्छ-लच्छ सुभ लच्छनन लच्छे है।
कहै 'पद्माकर' प्रताप नृप-रच्छ, ऐसे
तुरँग तनच्छ कवि-दच्छन को दच्छे है॥
पच्छ बिन गच्छन प्रतच्छ अंतरिच्छन में,
अच्छ अवलच्छ कला कच्छनन कच्छे हैं।
कच्छी कछवाह के विपच्छन के वच्छ पर,
पच्छिन छलत उच्च उच्छलत अच्छे हैं॥

*   *   *

ज्वाला तें जहर तें फनिंद फूतकारन तें,
बाड़व की बाढ़ हू तें विषम घनेरो है।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज,
ऐसो कछु गालिब गुनाहिन पै हेरो है॥
चक्र हू तें चिल्लिन तें प्रलै की बिजुल्लिन तें,
जम-तुल्य जिल्लिन तें जगत उजेरो है।
काल तें कराल त्यों कहर काल काल हू तें,
गाज तें गजब्ब त्यों अजब्ब कोप तेरो है॥

*   *   *

कहर को क्रोध किधौं कालिका को कोलाहल,
हलाहल-हौद लहरात लबालब को।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
तेरो कोप देखि यों दुनी में को न दबको ॥
बिज्जुलिन को चाचा है बिज्जुलिन को बाप बड़ो,
बाँकुरो बबा है बड़वानल अजब को।
गब्बिन को गंजन गुसैल गुरु गोलन को,
गंजन को गंज गोल गुंबज गजब को ॥

* * *

उच्छलत सुजस बिलच्छ अनवच्छ दिच्छ-
दिच्छन हूँ छीरधि-लौं स्वच्छ छाइयतु है।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
अच्छन में ओज परतच्छ पाइयतु है ॥
पच्छ बिन लच्छ-लच्छ बिकल बिपच्छ होत,
गब्बिन के गुच्छ पर तुच्छ ताइयतु है।
पटकत पुच्छ कच्छ कुच्छ पर सेस जब,
रुच्छ कर मुच्छ पर हाथ लाइयतु है ॥

* * *

पंथ-परिवार निज दारन को छाड़ि, दावा-
दारन को भाजै कौन सौदा करे जात है।
कहै 'पदमाकर' तुनीरन को तीर त्यों ही,
तानि कै कमानन में रौदा अरे जात हैं॥
साहिब सवाई श्री प्रताप दल सज्जत,
बिहद्द नद्‌-नदिन में पौदा परे जात हैं।
सौदा बिजै-वृंदन को लादिबे को मानो मद्-
मैगल मतंगन पै हौदा धरे जात है॥

*　　*　　*

गोला-से गयंदन के गोल खोलिबे में झिले,
रान के इसारे लेत वान के उचट्टा-से।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज,
बकसे तुरंग ते उमंग उठे बट्टा-से॥
आछे अच्छरीन के कटाच्छन तें लच्छ गुने,
पच्छ बिन लच्छ अंतरिच्छ घनघट्टा-से।
चाकन में चाक से चतुर्मुख-से चौहट में,
उलट-पलट्ट में पटत्तन के पट्टा से॥

*　　*　　*

पारावार-पार लौ अपार झिलि झारन,
अरिंदन के हाल प्रलै-काल के परा परैं।
कहै 'पदमाकर' त्यों ठौर-ठौर दौर-दौर,
दीह दावादारन पै दार के दरा परैं ॥
साहिब सवाई श्री प्रतापसिंह तेरी धाक,
धरा के धरैया धकधक्कन धरा परैं।
चंड चक्र चाप-लौं उदंड दंड दाप-लौं,
सुमारतंड ताप-लौं प्रताप के छरा परैं॥

* * *

कंदरन हहरैं अरिंदन की नहरैं,
सुनहरैं उठी धौं का पै कहर-कलाप की।
कहै 'पदमाकर' छतीस छत्रधारिन कों,
पारी सी चढ़ी है ज्यों तिजारी तन-ताप की ॥
बूझत हौं तुम्हें महाराज श्री प्रतापसिंह,
कुटिल कला है किधौं कपिल सराप की।
इन्द्र की अटा-लौं नरसिंह की सटा-लौं,
मारतंड की छटा-लौ छटा छहरै प्रताप की॥

* * *

धुवन धुंधरित धूर, धूर-पूरति धुर धुम्महु ।
'पद्माकर' परतच्छ, अच्छ लखि परत न भुम्महु ॥
कूरम-नृप-मातंग, जंग-जंगन जुटि जुट्टहिं ।
छकि छुट्टहिं बग छुट्ट, कुट्ट दिग्गजन उलट्टहिं ।
जिमि घन घमंड घुग्घरत घन, मद-निरझर झर-झर झरहिं ।
ढुकि टरहिं न टिप्पहि टिपटिपहिं, टकटकाइ टक्कर करहिं ॥

*　　　*　　　*

कवित्त

गाँउ गज-बाजि है दराज कविराजन,
पटैल को पराभव, फतूहन फलै गए ।
कहै 'पद्माकर' अभै दै राज-रैयत को,
मंत्रिन को मंत्र दै न काहू सों छलै गए ॥
साहिब सवाइ सुख-संपति समाज-साज,
जगत-नरिंदै निज नंदै दै भलै गए ।
बास वयकुण्ठ करिवे कों श्री प्रताप, पाक-
सासन के आसन पै पाँव दै चलै गए ॥

*　　　*　　　*

होली वर्णन

सवैया

गैल में गाइ कै गारी दई फिरि तारी दई औ दई पिचकारी ।
त्यों 'पद्माकर' मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ॥
सौ है बबा की करेहौ कहौ यहि फाग को लेहुँगी दाँव बिहारी ।
का कबहूँ मझि आइ हौ ना तुम नंदकिसोर या खोरी हमारी ॥

* * *

कवित्त

फहर गई धौ कबै रंग के फुहारन में,
कैधों तराबोर भई अतर-अपीच में ।
कहै 'पदमाकर' चुभी-सी चार चोवन में,
उलचि गई धौ कहूँ अगर-उलीच मे ॥
हाय इन नैनन ते निकरि हमारी लाज,
कित धौ हेरानी हुरिहारन के बीच में ।
उलझि गई धौं कहूँ उड़त अबीर रंग,
कचरि गई धौ कहूँ केसरि की कीच में ॥

* * *

हिंडोला-वर्णन

भौंरन को गुंजन विहार बन-कुंजन में,
मंजुल मलारन को गावनो लगत है।
कहै 'पद्माकर' गुमान हूँ ते मान हूँ ते,
प्रान हूँ तें प्यारो मन भावनो लगत है॥
मोरन को सोर घनघोर चहुँ ओरन,
हिंडोरन को वृन्द छवि-छावनो लगत है।
नेह सरसावन मे मेह बरसावन में,
सावन मे झूलिवो सुहावनो लगत है॥

*　　*　　*

फूलन के खंभा पाट-पटरी सुफूलन की,
फूलन के फँदना फँदे है लाल डोरे मे।
कहै 'पद्माकर' वितान तने फूलन के,
फूलन की झालरि त्यों झूलति झकोरे में॥
फूलि रही फूलन सुफूल फुलवारी तहाँ,
फूलई के फरस फबे है कुंज कोरे में।
फूलझरी, फूल-भरी, फूल-जरी फूलन में,
फूलई-सी फूलति सुफूल के हिंडोरे में॥

*　　*　　*

८

महाकवि छत्रसाल

जीवन-परिचय

बुंदेलखण्डकेसरी प्रातःस्मरणीय महाराज छत्रसाल का नाम किसने न सुना होगा। स्वाधीनता के आजीवन उपासकों की श्रेणी में छत्रसाल का नाम बहुत ऊँचा है। दक्षिण में वीरशिरोमणि शिवाजी ने, पंजाब में सिक्खों के (दशम गुरु) गुरु गोविन्दसिंह ने तथा राजस्थान में हिंदुपति महाराणा प्रताप ने जो काम किया, वही बुंदेलखंड में महाराजा छत्रसाल ने किया है। औरंगज़ेबी युग में वे जीवन-भर हिंदू-जातीयता के लिये लड़े और प्राणपण से उसकी रक्षा की। आर्य्य का उत्कृष्ट आदर्श सामने रखकर उन्होंने अनुकरणीय शासन किया। भारत के सच्चे इतिहासकार उनका शुभ नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करेंगे, भले ही पाश्चात्य इतिहासलेखक उन्हें अज्ञानान्धकार में छिपा रक्खें।

महाराज छत्रसाल न केवल हिंदुत्व के रक्षक ही थे, प्रत्युत भगवान् के एकान्त भक्त और ऊँचे कवि भी थे।

कवियों का जैसा कुछ सम्मान इन महाराज ने किया, कोई क्या करेगा ? महाकवि भूषण का ही उदाहरण इनकी गुणग्राहकता के लिये पर्याप्त है। भूषण का महाराज शिवाजी के दरबार में अच्छा सम्मान था। एक बार वे साहूजी के यहाँ भली भाति सम्मानित हो छत्रसाल के यहा आये। वहाँ भी कवि का यथेष्ट सत्कार किया गया। कवि की विदाई करने समय आपने उनकी पालकी का डंडा स्वयं अपने कधे पर रख लिया। भूषण यह देखकर गद्गद हो गये और पालकी से कूदकर कहने लगे—'बस, महाराज !'

> राजत अखंड तेज, छाजत सुजस बडो,
> 　　गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
> जाहि के प्रताप सो मलीन आफ़ताब होत,
> 　　ताप तजि दुजन करत बहु-ख्याल को॥
> साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीने,
> 　　'भूषन' भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ?
> और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
> 　　साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

इसी गुणग्राहकता पर मुग्ध होकर भूषण ने महाराज के लिये 'छत्रसाल दशक' की रचना की है। दशक के कुछ पद्य तो इतने ओजस्वी, उत्कृष्ट और हृदयग्राही हैं कि उन्हें पढ या सुनकर कायर भी फड़क उठता है। धन्य है ऐसी गुणग्राहकता ! जौहरी ही जौहरी को पहचानता है। कवि ही कवि को जानता है। महाराज

छत्रसाल स्वयं एक सफल कवि थे, इसी से उन्होंने कवियों को अपने हृदय में ऐसा सम्मानपूर्ण स्थान दिया।

महाराज छत्रसाल की कुछ कवितायें सौभाग्यवश हमें प्राप्त हुई हैं। उन्हीं को हमने अपने इस सग्रह में स्थान दिया है। कविता ऐसी उच्च कोटि की है कि पढ़ते ही बनती है।

सवैया

चाहैं तौ मेरु करै रज ते, रज रंचक चाहै तौ मेरु समाहैं।
जे जन पालतीं, ख्यालतीं, ख्यालन तीन हूं लोकन की महिमा हैं॥
'छतसाल' कहै तिनकी उपमा, कहि को कल्पद्रुम कामदुधा हैं।
हैं भव-भीर की मेटन पीर की, श्री रघुबीर समर्थ की बाहैं॥

कवित्त

दिग्गज दुचित्त चित्त सोचत पुरन्दर भे,
आजु मेरे करी कौं का भिच्छुक विलसि है।
देत गजदान भूप दसरथ राज-राज,
राम-जन्म भये कौ बधावनो हुलसि है।
हाथी लै हजारन के हलके सु जाचक हूँ,
आछे अलकेस मानो आय कै सुबसि हैं।
गोप लै गनेस गिरिजा सो 'छत्रसाल' कहै;
गज के भरम लै भिखारिन बगसि हैं॥

गाई विधि वेदन में व्यास जू पुरानन में,
बालमीकि रामायन परम प्रसंग मे,
नारद विसारद त्यों सारद औ शेष मिलि,
गाई है गनेस हूँ सुरेस सिव संग में ॥
पारावार पार कों न पाय 'छत्रसाल' कहै,
मति अनुरूप राम सुजस उमंग मे।
मेरी मति अल्प तेरो चरित-कलाप सिंधु,
कृपासिंधु ! दीजे अवलंब या तरंग में ॥

* * *

नीति-विषयक पद्य

चाहौ धन धाम भूमि भूषन भलाई भूरि,
सुजस सहूर जुत रैयत को लालियौ।
तोड़ादार घोड़ादार बीरन सो प्रीत करि,
साहस सों जीति जंग, खेत ते न चालियौ ॥
सालियौ उदंडनि कों दंडनि को दीजो दंड,
करि कै घमंड घाव दीन पै न घालियौं
बिन्ती छत्रसाल करै होय जो नरेस देस,
रै है न कलेस लेस मेरो कह्यो पालियौ ॥

* * *

सुजस सो न भूषन, विचार सो न मंत्री त्यों,
साहस सो सूर कहूँ ज्योतिषी न पौन सो।
संयम सी ओषधी न, विद्या सो अटूट धन,
नेह सो न बंधु औ दया सो पुन्य कौनसो॥
कहै 'छत्रसाल' कहूँ सील सो न जीतवान,
आलस सो बैरी नाहि मीठो कछु नौन सो।
सोक कै सी चोट है न भक्ति ऐसी ओट कहूँ,
राम सो न जाप और तप है न मौन सो॥

*　　　*　　　*

जाके बीर एक-एक काल तें कराल हुते,
जानै गहि काल आनि पाटी में बँधायौ है।
कुंभकर्न भ्रात जाकी धाक तें सकात लोक,
पूत इन्द्रजीत इन्द्र जीतिकै कहायौ है॥
कहै 'छत्रसाल' इद्र वरुन कुबेर भानु,
जोरि जोरि पानि आनि हुकुम मनायौ है।
जौन पाप रावन के भौना मे न छौना रह्यो,
तौन पाप लोगन खिलौना करि पायौ है॥

*　　　*　　　*

दोहा

रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।
छत्रसाल ता राज कौ, बार न बाँको जाहि ॥१॥
कृपनाई भाई न भल 'छत्रसाल' के जान।
दानाई दातान की, बलि-वस मे भगवान ॥२॥
बालक लौं पालहि प्रजा, प्रजापाल 'छतसाल'।
ज्यो सिसु-हित अनहित सुहित, करत पिता प्रतिपाल ॥३॥
प्रनतारति भंजन विरद, दायक अभिमत काम।
छत्रसाल-संतान कौं, इक सुभ-दायक स्याम ॥४॥

* * *

श्रीकृष्ण-कीर्तन के कुछ और सरस पद्य

गोद में मोद सों लैकै ललै, छत्रसाल बलायें लई बहुतेरी।
प्रेम बढ़ाय हियो हुलसाय, ललै ललचाय न भौंह तरेरी ॥
पापिन! पाछ कहा समुझी, ब्रजबासिनु की जिय-जीवन ए री।
कान्हर कों विष देति अरी, कसकी छतिया न, कसाइन! तेरी ॥

* * *

केती मृगनैनि मृगी घूमति अधीर बीर,
याही ब्रज-कानन में सोर खोर-खोर है।
खोजत फिरैहै को बचैहै, क्यों बचैगी बाल,
खेलैहै अहेर आय नन्द को किसोर है॥
कहै 'छत्रसाल' वाकौ रूप लखैं अंग-अंग,
रंग भरि जात, कुलकानि आनि तोर है।
हानि होत मान की सुबासुरी सुने तें नैक,
तान भई तीर औ कमान भई पोर है॥

* * *

विधि-करतव्यता की करामात जेती, तेती,
सब ब्रजराजजू के हाथ सुनियतु हैं।
हाथ ब्रजराजजू कौ भक्ति के अधीन सुन्यौ,
भक्ति नित सत्य के अधीन गुनियतु है॥
धर्म के अधीन सत्य धर्म कर्म के अधीन,
कर्म बस 'छत्रसाल' बयौ लुनियतु हैं।
सुनत सुनावत मे लोक-कहनावत में,
जैसो रचवार तैसो साँचो चुनियतु है॥

* * *

राधा के सनेह हित गेह तजि आयौ इतै,
और कहा कहौ गाय विपिन चरायौ मै।
जायौ जौन जनक तौन तनिक न मान्यौ मै,
राधा के सनेह नन्दलाल ह्वै कहायौ मै॥
राधा के सनेह मेह-नायक को जीत्यौ जाय,
कहैं कृष्ण 'छत्रसाल' गिरि कों उठायौ मै।
मोकों कहै लाख बार भाषि-भाषि साखि दैदै,
राधा बिनु, ताहि नैक भूलिहू न भायौ मैं॥

* * *

ग्राह नै गजब करि गज कों ज्यों ग्रस्यौ आय,
छूटत छुड़ायौ नाहिं, गयौ हारि बल तें।
लोप भयौ कोप कौ कलाप, ओप चोप गयौ,
करिहैं पयान प्रान आजु याही पल तें॥
कहै 'छत्रसाल' करी कर लै कमल ध्यायौ,
कंजनैन कृष्ण किधौ कढ्यौ केलि-जल तें।
करि ही के कमल तें कै कर के कमल तें,
कमल के नल तें कै कमल के दल तें॥

* * *

भूलि जिन जैयौ हमे द्वारका कौ राज पाय,
ए जू प्राननाथ ! कहूँ राजसी महल मे।
प्रीति लरिकाई की, प्रतीति गोप ग्वालिन की,
जीति मघवाहि गिरिराज लै सहल मे॥
रास-रमनी कौं, धरनी कौं रास-मंडल की,
भूलियौ न नंदै नंद-रानी को अहल में।
जाहु चिरराजु करौ महाराज ! छत्रसालै,
राखियौ जू पास खास महल-टहल में॥

*　　*　　*

छप्पय

कृष्ण, शौरि, रुक्मिनी-रमन राधावर, गिरिधरि।
दामोदर, ब्रजचंद, देवकीनंद, स्याम, हरि॥
कंसाराति, गुपाल, नंदनंदन, सुवेनु-धर।
वासुदेव, सकटारि, वका-केसी-आघारि, वर॥
मोहन, मुकुंद, गोविंद, जै धेनुकारि, गोपीरमन।
शिशुपाल-मल्ल-मर्दन, प्रभो 'छत्रसाल' के अघदमन॥

*　　*　　*

भक्तिसम्बन्धी

पूजन को देविन की जुरिकै जमातें आय,
घेरि-घेरि पंथ मे घटा सी घुमड़ी परै ।
कहै 'छत्रसाल' संभु-रानि, इन्द्र-रानि विधि-
रानी रमारानी मोद मांड़ि उमड़ी परै ॥
जाकी ओर राधा की परति दृग-कोर नैक,
रिद्धि सिद्धि ताकी ओर झूमि झुमड़ी परै ।
ओड़ी परै कौन पै बगोड़ी एक गोड़ी दारि,
संपदै निगोड़ी होड़ा-होड़ी सुमड़ी परै ॥

* * *

कमल गुलाब आब अमल अमोल छबि,
कोमल नवल नवनीत सों अनंदौ मैं ।
कहै 'छत्रसाल' नख नखत-कलान-पति,
हौहुँ लवलीन, भव-फंद में न फंदौ मै ॥
भावगम्य ध्यावत मुनीस सुर सिद्ध सबै,
जिनके सुबस चारि वेद भेद छंदौं मै ।
अति सुखदाय दीन जन के सहाय पाय,
प्यारी राधिका के कर जोरि जोरि बंदौ मै ॥

* * *

देव-पति-रानी, देव-रानी, नग-नाग-रानी,
दिन-मनि-रानी, चन्द्र-रानी झलाझल की।
कहै 'छत्रसाल' यच्छरानी अरु पच्छि-रानी,
गावै अप्सरानी जासु कीरति अमल की॥
वानी, महारानी, रुद्र-रानी कर जोरि-जोरि,
चाहै कृपा-कोर चारु लोचन कमल की।
ह्वै कै परिचारिका ए परतीं पगनि आय,
करतीं टहल नित्य राधिका-महल की॥

*　　*　　*

तुम घनस्याम हम जाचक मयूर मत्त,
तुम सुचि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं।
चारुचन्द्र प्यारे तुम लोचन चकोर मोर,
तुम जगतारे हम छतारे उचारे हैं॥
'छत्रसाल' मीत मित्रजा के तुम ब्रजराज!
हम हूँ कलिंदजा के कूल पै पुकारे हैं।
तुम गिरिधारी हम कृष्ण-व्रत-धारी, तुम,
दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं॥

*　　*　　*

औरंगजेब को उत्तर

जाकौ मानि हुकुम सुभानु तम-नासु करै,
चन्द्रमा प्रकासु करै नखत दराज कौ।
कहै 'छत्रसाल' राज-राज है भँडारी जासु,
जाकी कृपा-कोर राज राजै सुरराज कौ॥
युग्म कर जोरि-जोरि हाजिर त्रिदेव रहैं,
देव परिचार गहैं जाके ग्रह काज कौ।
नर की उदारता में कौन है सुधार, हौ तो,
मनसबदार सरदार ब्रजराज कौ॥

* * *

१

महाकवि जगन्नाथदास रत्नाकर

जीवन-परिचय

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म काशी में स० १९२३ में हुआ था। ये अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वज पहले पानीपत में रहते थे, तथा मुगल-सम्राटों के पास अच्छे २ पदो पर प्रतिष्ठित थे।

आपके पिता बाबू पुरुषोत्तमदास जी फारसी के उद्भट विद्वान् थे। हिंदी-कविता का प्रेम भी उनमें विशेष रूप से पाया जाता था क्योकि पिता का ही प्रभाव सतान पर पड़ता है। जगन्नाथदास जी ने उन्हीं का अनुसरण किया।

जब ये छोटे थे, इनके पिता इन्हें अपने मित्र भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के पास ले गये। उन्होने इनकी एक रचना देखकर भविष्यवाणी की कि 'किसी दिन यह बालक एक प्रतिभाशाली कवि होगा।' और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। इन्होने अपनी प्रतिभा से उनके कथन को सत्य कर दिखाया।

इनका पठन-पाठन काशी में ही हुआ था। सन् १८९१ में इन्हों ने फ़ारसी लेकर बी० ए० की परीक्षा पास की। एम० ए० में भी

फ़ारसी का ही अध्ययन किया परन्तु कुछ एक कारणों से ये परीक्षा में न बैठ सके। सन् १९०० में इन्होंने आवागढ़ स्टेट में नौकरी कर ली। क्योंकि वहाँ इनका स्वास्थ्य ठीक न रहता था। इन्होंने दो वर्ष कार्य करके त्यागपत्र दे दिया और काशी लौट आये। कुछ दिन विश्राम लेने के पश्चात् सन् १९०२ में ये स्वर्गीय अयोध्या-नरेश सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर K C I E के प्राईवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए और उनके मृत्युकाल तक उसी पद पर रहे। तत्पश्चात् इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर महारानी साहिबा ने इन्हें अपना प्राईवेट सेक्रेटरी बना लिया और अंत तक ये उसी पद पर नियुक्त रहे।

पहले आप उर्दू में कविता किया करते थे परन्तु धीरे २ प्रतिदिन इनकी रुचि हिंदी की ओर बढ़ती गई और इन्होंने हिंदी-साहित्य का अध्ययन किया, जिसमें इन्हें पूर्णतया सफलता प्राप्त हुई। फिर इन्होने उर्दू को छोड दिया और ब्रजभाषा में कविता करनी प्रारंभ कर दी। कुछ ही काल के अनन्तर ये ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि कहलाने लगे। इनके कवित्तो में साक्षात्, देव पद्माकर और मतिराम के से कवित्तो का आनंद मिलता है। ये बड़े हँसमुख और विशाल हृदय के मनुष्य थे। इनका स्वभाव बडा मधुर, स्मरणशक्ति बडी तीव्र और कविता पढने का ढंग अत्युत्तम था। इन्होंने समालोचनादर्श, साहित्यरत्नाकर घनाक्षरी, नियमरत्नाकर, हिंडोल तथा हरिश्चंद्र नामक काव्य ग्रंथो की रचना की। बिहारी पर लिखी हुई इनकी टीका भी देखने योग्य है। गंगावतरण, कल-

काशी, अष्टकरत्नाकर और उद्धवशतक ये चार काव्य-ग्रंथ इन्होंने और भी लिखे हैं।

आप व्रजभाषा के तो श्रेष्ठ कवि थे ही, किंतु इसके साथ ही साथ खडी बोली के भी पूर्णतया पक्षपोषक थे। आप छात्रों के कवि सम्मेलनों में पधारकर उन्हें खूब प्रोत्साहित करते थे। आपका परलोकवास सं० १९८९ में हुआ। इनको एक प्रकार से व्रजभाषा का अंतिम श्रेष्ठ कवि समझना चाहिए। इनकी फुटकल कविताएँ भी बहुत मिलती हैं।

ग्रीष्म

कैधौं अति दुस्सह दवागि की दपेट कैधौं.
बाड़व की बिषम झपेट झरझार है
कहै 'रतनाकर' दहकि दाह दारुन सौं.
उगिलत आगि कैधौं पावक-पहार है।
रुद्र-दृग तीसरे की ज्वाल विकराल कैधौं.
फेकति फुलिंग कै फनिंद-फुफकार है
बीर पति हेत कैधौं अवनि उसास लेति,
ऐसी यह ग्रीषम की भीषम लुआर है।

* * *

भौंरी-सी लगनि बिरहागिनी बियोगिनि कौं.
जोगिनि कौं होत पंचताप हू सुहायौ है।

कहै 'रतनाकर' तपाकर ससी कौ जानि,
रैन हूँ चकोरी कैं न चैन चित आयौ है।
सोखे लेन बारि सबै भानु हूँ पिपासित ह्वै,
त्रासित ह्वै हिमगिरि गैल धरि धायौ है
प्रबल प्रचंड भूरि भीषम अखंड दाप,
ग्रीषम के ताप कौ प्रताप जग छायौ है।

* * *

ग्रीषम कौ भीषम प्रताप जग जाग्यौ भए,
सीत के प्रभाव भाव भावना भुलानी के;
कहै 'रतनाकर' त्यौं जीवन भयौ है जल,
जाके बिन मानस थिरात नाहिं प्रानी के।
नारी-नर सकल बिकल बिललात फिरैं,
भूले नेम प्रेम हूँ की कलित कहानी के;
काहू कै हियैं मैं रस नैकु सरसावत ना,
पंचसर हूँ के भए सर बिन पानी के।

* * *

गजेंद्र-मोक्ष

रमत रमा के संग आनँद-उमग-भरे,
अंग परे थहरि मतंग अवराधे पै
कहै 'रतनाकर' बदन-दुति और भई,
बूँदैं छई छलकि दृगनि नेह-नाधे पै।
धाए उठि, बार न उबारन मैं लाई नैकु,
चपला हूँ चकित रही है बेग साधे पै।
आवत वितुंड की पुकार मग आधे मिली,
लौटत मिल्यौ त्यौं पच्छिराज मग आधे पै।

* * *

संगवारे महत मतंगनि के संग सबै
निज-निज प्रान लै पराने पुसकर तैं,
कहै 'रतनाकर' विचारौ, बल-हार्‌यौ तब
टेरि हरि पार्‌यौ कल कंज गहि सर तैं।
पहुँचन पायो पुनि वारि लौं न जौलौं वह,
तौलौं लियौ लपकि उबारि हरबर तैं।
एक तैं ललायौ, चक्र एक तैं चलायौ,
गह्यौ एक तैं भुसुंड, पुंडरीक एक कर तैं।

* * *

सुंड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
बिबस बिसारि काज सुर के समाज कौ
कहै 'रतनाकर' निहारि करुना की कोर,
बचन उचारि, जो हरैया दुख-साज कौ।
अंबु पूरि दृगनि बिलब आपनोई लेखि,
देखि-देखि दीह छत दतनि दराज कौ,
पीत पट लै-लैकै अँगौछत सरीर कर-
कंजनि सौं पोछत भुसुंड गजराज कौ।

* * *

बसंत

एकाएक आई कहूँ बैहर बसंतवारी
संतवारी मंडली मसूसि त्रसिबै लगी,
कहै 'रतनाकर' दृगनि व्रजबासिनि कै
रंगनि की बिसद बहार बसिबै लगी।
मसकन लागे बर बागे अंग-अंगनि पैं
उरज उतंगनि पैं चोली चसिबै लगी,
धुनि डफ-तालनि की आनि बसी प्राननि मैं
ध्याननि मैं धमकि धकार धसिबै लगी।

* * *

मिश्रित पद्यावली

सुण्ड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
विवस बिसारि काज सुर के समाज कौ।
कहै 'रतनाकर' निहारि करुणा की कोर,
वचन उचारि, जो हरैया दुख साज कौ॥
अंबु पूरि दृगनि विलंव आपनोई लेखि,
देखि देखि दीन्ह छुत दन्तनि दराज कौ।
पीत पट लैलै कै अंगौछुत सरीर कर,
व्यंजनि सौं पोंछुत भुसुण्ड गजराज कौ।

* * *

गंगा की महिमा

कहत विधाता सौं विलखि जमराज भयौ,
अखिल अकाज है हमारी राजधानी कौ।
सुरसरि दीन्ही ढारि भूप के भुलावै माहि,
कीन्यौ नाहि नेकहूँ विचार हित हानी कौ॥
निज मरजाद पै कछू तो ध्यान दीजै नाथ,
कीजै इमि प्रकट प्रभाव बर बानी कौ।
पावै नर नारकी न रंचक उचारि क्यों हूँ,
गंगा को गकार औ चकार चक्रपानी कौ॥

* * *

साहित्य-सुधा

दीवे काज विप्र कौं बुलाई यदुराज, जानि
हिय हुलसाई सुरराज के नगर मैं ।
कहै 'रतनाकर' उमँगि रिद्धि-सिद्धि चलीं,
होड़ करि दौरत दरेरत डगर मैं ॥
सौंहैं आनि पै न उकस्यौ हैं आनि रोकि सकी,
विवस विचारी वेगि झोंक के अगर मैं ।
ठमकी दिखाय द्वारिका मे हम कौं जो फेरि,
ठमकी सु आय कै सुदामा के नगर मैं ॥
करुना प्रभाव कल कोमल सुभाव वारौ,
जन रखवारो सदा दिवस त्रिजामा कौ ।
कहै 'रतनाकर' कसकि पीर पावै उर,
ध्यान हूँ परे पै दुख दीन नर वामा कौ ॥
याही हेत आखत को राखत विधान नाँहि,
पूजा माँहि पीतम प्रवीन सत्यभामा कौ,
पाण्डव वधू को बच्यौ भात सुधि आइ जात,
छाइ जात नैनन पै तंदुल सुदामा कौ ।

* * *

मारुत की लहरें

वारिधि बसंत बढ़्यो चाव चढ़्यो आवत है,
बिवस वियोगिनी करेजो थामि थहरै ।

कहै 'रतनाकर' त्यौं किसुक-प्रसून-जाल,
ज्वाल बड़वानल की हेरि हिये हहरैं ॥
अवधौं उबारै कौन अबला बिचारिन कौं,
धीरज-धरा पै कहौ कैसे पग ठहरैं ।
भौंर चहुँ ओर भ्रमैं, एको पल नाहि थमैं,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं ॥

शब्दार्थ-कोष

मलिक मुहम्मद जायसी

सेवँरि भूआ-सेमर की रुई
रात-लाल
सिसिटि-सृष्टि
सरा-चिता
हिअइ-हृदय
निसरा-निकला
परेवा-चिड़ियाँ
काँठा-गले की रेखा
हरिअर-हरा
पतिंग-पतंग
निरमरी-निर्मल
कबिलासू-कैलाश पर्वत
बहुरा-लौटा
अछरिन्ह-अप्सराओं
बारी-बालिका
ओनाहीं-झुकते हैं
सुरुज-सूर्य
परगसी-प्रकाशित हुई
सूरू-सूर
रिनि-बधी-ऋणबद्ध
नग-वासी-नागपाश
अरुझइ-उलझना
बाँदू-कैद
पाँडुक-भूरा
गिउ-ग्रीवा
ऊभि-ऊर्ध्व
दुहेला-कठिन

पिरिथुमि–पृथ्वी
मेरवइ–मिलावे
लाहा–लाभ
निरारे–न्यारे
छहराऊँ–फैला दूँ
सासॉ–श्वास
चिन्हारी–पहिचान
डिठिआरा–दृष्टि युक्त
छीजिअ–क्षीण

महाकवि आलम

अलेख–अज्ञेय
निमेष–पल
विह्वल–व्याकुल
ढरत है–द्रवित होते है
सुरति–याद
बिसासी–विश्वासी
झूरी–खुश्क
तरनिजा–यमुना
औधि–अवधि
अधारी–काठ का डडे मे लगा हुआ पीढा जिसे साधु जन सहारे के लिये रखते है

गॉसी–तीर या बरछी का फल
पासी–फॉसी
सॉसी–जीवन
झखकेतऊ–कामदेव
राजिव नयन–कमलनयन
बिस–विष और जल
अरबिंद–कमल
हंसनंदनी–यमुना
लोल–चचल
जीवी–जिह्वा
धूरिजटी–शिवजी
बासुकी–शेषनाग
मंगला–पार्वती
हिंगलाज–दुर्गा
कलनि–कलाऍ
धौरी–कपिला

महाकवि केशव

अटा–अट्टालिका
डकै–ढके
बच्छोज–वक्षोज
जूह-नारी–स्त्री-समूह
सस्त्रसाला–अस्त्रागार

अद्रि–पर्वत
पन्नगी–नागिन
हाला–मदिरा
कारिका–नट
सिंसुपा-मूल–शीशम की जड़
कृसानु–अग्नि
सची–इन्द्राणी
पयो-देवता–वरुण
कोस–कोष
पद्मा–लक्ष्मी
तच्छका–तक्षक
आरक्त-पत्रा–लाल पत्ते वाला
जुन्हाइ–ज्योत्स्ना
ससुरारि–ससुराल
अगना–स्त्री
दारिद्–दरिद्रता
खीझिय–चिढ़ना
सालई–दुखी करे
सूतक–नव प्रसूता स्त्री
रॉड़–विधवा
अघ ओघ–पापों का समूह
आगररु–घर
राजै–विराजमान है
बाम देव–महादेव
शिखीन–मोर
पाकशासन–इन्द्र
हरा–हरा
अवदात–उज्ज्वल
सुदेश–सुन्दर
शीश–भी
शिरोरुह–बाल
तनोरुह–रोम
जरा–बुढ़ापा
जरकबर–वृद्धावस्था का कम्बल
उदात–विशद
व्याधिनि–रोग
मदन–कामदेव
रजनि पति–चन्द्रमा
आलबाल–क्यारा
बंक–टेढ़े
शोणित–रुधिर
शेष–लक्ष्मण

भक्त रसखान

सुगाइन संग–सुन्दर गौवों के साथ
मरकत–मणि

कामरिया–कमली
तड़ाग–तालाब
कलधौत–सुवर्ण
चायन–चाव से
पलोटत–दबा रहे हैं
कालिन्दी–यमुना
अघानी–तृप्त
अँसुवानी–अश्रुयुक्त
अंक–अंग
मुसकानि–प्रसन्नता
बाट–मार्ग
कानि–मर्यादा
पाग–पगडी
माँझ–भीतर
अनब्याही–कुँवारी
ना सकात–नि:शक
कछोटी–लँगोटी
रहै, पचिहारि–थक गये
लटू–मस्त
तरुन वारी–युवावस्था
छोहरा–बालक
बगराइगो–बिखेर गया
चितैबे–देखने

ठगौरी–ठगी
बावरी–पगला
एतिक–इतनी
छला –अँगूठा
गुंज–रत्ती
अधरान धरी–होठों पर धरी हुई
कुल-कानि–कुल की लज्जा
चित्र कढ़े–मूर्तिवत्
गोधन–गौएँ
खिरक–गौशाला
दोहनि–दूध दोहने का पात्र

महाकवि विद्यापति

आजुक–आज की
पड़ल–पड गया
नागर–प्रतिम
अपतोस–अफसोस
बिसरल–भूल गये
ककरा–किससे
श्रीखण्ड—चदन
अओरि—और
परबोध–ज्ञान
हुतास–अग्नि

विहरति—फहरना
गेल—मार्ग
भाख—भाष
पहु—प्रीतम
धैरज—धीरज
सुहाओन—सुहावन
तिरपित—तृप्त
जामिनअ—रात्रि
विदग्ध—जले हुए
तरे—तले
तिर—तट
पाइक्काह—पैदलों के
पल्लानिअउ—भाग उठे
अनेअ—अनेक
आनिआ—लाये गये
परक्कमेहि—पराक्रम
दीप दीपे—द्वीपं द्वीपान्तर
सत्तिरूअ—शक्ति रूप
पाञे—पैरों से
मम्म—मर्म
सद्द—शब्द
खोणि—पृथ्वी
वाल—बाल

वाढल—बढ़ होगये थे
काढल—निकाले गये
वज्ज—वज्र
सङ्गाम—युद्ध
अरिराअन्ह—शत्रुराजाओं
वेवि—दोनों
सहोअर—सहोदर
राअ गिरि—राजगिरि
चप्परि—छाने हुए
सीगिन—बारूद भरने के लिये खोखली सींग
कुरुम—कूर्म
पायक—पैदल
खग्गग्ग—तलवारें
मगोल—मगोल
बुज्झइ—समझता था
भोअण—भोजन
कादम्बरि—मदिरा
लोअन—लोचन
जोअण—योजन
वलके—बेल
जोले—जोड़ते थे
बम्भन—ब्राह्मण

धॉगड़–धग्गड़
गोरु–गऊ
मिसमिल–बिस्मिल्ला
हट्ट–बाजार
सांवर–शाबर
चथड्ञे–चीथड़े
दुग्गम–दुर्गम
विभारि–निकाल कर
लूडि–लूट
अरजन–आमदन
अन्याञे–अन्याय
कन्दल–युद्ध
थीर–स्थिर
पसञो–प्रीति
लटक–धग्गड
भोअण भख्खण–खाना पीना
आवत्त हुअ–आ रहा था
राउत–राजपुत्र

महाकवि देव

अलख–अदृश्य
नरनाहन–राजाओं
निहोरतो–प्रार्थना करता

पाथर–पत्थर
बोरतो–डुबा देता
दई–विधाता
मीच–मृत्यु
बिलाने–लुप्त हो गये
मकरी–मकड़ी
पोत–जहाज
पाँख–पख
झुनझुनियाँ–पायजेब
धुनियाँ–रुई धुनने वाला
वलूलनि–भँवर
सिखी–मोर
पयान–प्रयाण
जाँवन–जामुन
केसो–केशवदास
ताना रीरी ता धनं तताथीनै–गाने के बोल
ठयो–बना
उनयो–झुकते
चेटकी–कौतुकी
चेरो–दास
ख्याल–खेल
ऽयन–घर

घमात–धूप सेकना
घमोयन–झाड़ियों
राजसिरी–राजश्री
झुपरी–झोपड़ी
खोखरि–शरीर
जंबुक–गीदड़
तुरिया–ज्ञान की दशा
पखेरू–पत्ती
रंकिनी–दरिद्र
छोही–अनुरागी
जकी–झकी
छोभ–क्रोध
छाहौं–छाया
सविता–सूर्य
अथाइन–बैठक
पयोधि–समुद्र
फेन–झाग
पाँचन–पचों
गहिरे–गर्व
औचक–अकस्मात्
आखर–अक्षर
घहरिया–घना शब्द करते हैं
झहर-झहर–झर २ शब्द करके
हहर-हहर–डर २ कर
फहर-फहर–काँप २ कर
उमहत–उमड़ते
अरविन्दु–कमल
मल्लि–मल्लिका
टिकासरो–टिकने की जगह
रहसि रहसि–प्रसन्न हो २ कर
उचकि उचकि–उछल २ कर
जकि जकि–भौंचक्का होकर
थिरात–ठहरती

महाकवि पद्माकर

गुन-ग्रामा–गुणवान्
छेम–क्षेम
दरियाव–समुद्र
उमहत–उमड़ते
काँची–कच्ची बात
दराज–दीर्घ
तुपकैं–तोप
चिल्लिका-सी–बिजली सी
सनंकैं–सन् सन् शब्द करती
भनंकैं–भौंरों का शब्द
भभेरा–घबराकर

झर्झरा—झर २ शब्द करके
गाज—बिजली
दिग्घ—दीर्घ
अचाका—अचानक
पन्नगाली—सर्पों की पङ्क्ति
दक्के—धक्के
सिप्पे—सिपाही
टिप्पे—युक्तियाँ
अराबो—तोपे
अवाजै—आवाज
सोक-सिंधून—शोक समुद्र
बग्घान—बाघ
ती—स्त्री
थिति—स्थिति
रजत-पहार—चाँदी का पहाड़
जञ्ञ—यज्ञ
थाप—प्रतिष्ठा
जकि-से—भौचक्के से
चित्रगुप्त—१४ यमराजो मे से एक जो पापियो के पाप पुण्य का लेखा करता है
देवनदी—गगा
फरद—स्मरणार्थ एक कागज पर लिखी वस्तुओ की सूची या लेखा
कुराही—कुमार्गी
कलही—लड़ाके
डरात हुतो—डरता था
कचरिहौं—दबाऊँगा
दगादार—धोखेबाज
कछार—तट की नीची भूमि
छ्वै कै—छू कर
पतित-कतारे—पापियो की पङ्क्ति
मरजादा—मर्यादा
अंतरिच्छ—आकाश
कामद—अभीष्टदाता
मजेजवंत—स्वाभिमानी
बसु—धन
सुबरन—सुन्दर अक्षर
बरबस—जबरदस्ती
नरिंद—राजा
घनसार—कपूर
मुसकाइबो—मुस्कराना
ततच्छ—तत्क्षण
चिच्छिन—वज्र
कराल—भयकर

गजब्ब–गजब

हलाहल-हौद–विष का तालाब

कुच्छ–पेट

रुच्छ–क्रोध

तुनीरन–तरकश

मद-मैगल–मस्त हाथी

बकसे–दान दिये

लच्छ–लाख

दीह–दीर्घ

दावादारन–दावा रखने वाले

तिजारी–तीसरे दिन चढने वाला बुखार, वेश्या तप

छहरै–फैली हुई

धुंधरित–धुँधला

परतच्छ–प्रत्यक्ष

फतूहन–विजय

पाक-सासन–इन्द्र

खोरी–गली

तराबोर–भली भाँति भीगा हुआ

उलीच–उछालना

हुरिहारन–होली खेलनेवाले

मलारन–मल्हार राग

बितान–मंडप

कामदुघा–कामधेनु

महाकवि छत्रसाल

पुरन्दर–इन्द्र

करी–हाथी

अलकेस–कुबेर

विधि–विधाता

सहूर जुत–योग्यतापूर्वक

तोड़ादार–तोपची

उदंडनि–दुष्टों

पौन–पवन

पाटी–पीढा

सकात–डरता था

छौना–लड़का

ललै–पुत्र

कसकी–फटी

खोर-खोर–गली-गली

अहेर–शिकार

सुबांसुरी–सुंदर बंसरी

लुनियतु हैं–काटते हैं

मेह-नायक–इन्द्र

कंजनैन–कमलनेत्र

मघवाहि–इन्द्र को

सहल में–आसानी से
शौरि–श्रीकृष्ण का एक नाम
संभु-रानि–पार्वती
नखत-कलान-पति–चन्द्रमा
देव-पति-रानी–इन्द्राणी
परिचारिका–दासी
सुभानु–सूर्य
युग्म कर–दोनों हाथ
त्रिदेव–ब्रह्मा-विष्णु-महेश

जगन्नाथदास रत्नाकर

पावक-पहार–ज्वालामुखी
रुद्र–शिव
फुलिंग–चिनगारी
लुआर–लू
सीरी–शीतल
तपाकर–गरमी पहुँचाने वाला
थिरात–ठहरते
पंचसर–कामदेव
रमा–लक्ष्मी
परे थहरि–काँप उठे
बार–देर
उबारन मै–उद्धार करने में
बितुंड–हाथी
पच्छिराज–गरुड़
पुडरीक–श्वेत कमल
छत–घाव
अँगौछत–पोछने लगे
मसूसि–दु खी होकर
मैन–कामदेव
मलिंद–भौंरा
लूक–आग की लपट
सुरसरि–गगा
बगर–महल
त्रिजामा–रात्रि
करेजो–कलेजा
किंसुक-प्रसून-जाल–पलाश पुष्प
मारुत–वायु